संध्या राग

अनुवादक
सिद्ध गोपाल

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई सड़क, दिल्ली।

सन्ध्या राग

मूल लेखक

अ० न० कृष्णराव

अनुवादक

सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

भूमिका

कुछ काल से हिंदी जानने वाली जनता में भारत के अन्य भागों के बारे में जानने तथा उनके साहित्य का रसास्वादन करने की इच्छा बढ़ रही है। बंगाली, मराठी आदि उत्तर भारत की भाषाओं के साहित्य का तो कुछ परिचय हिंदी-भाषी जनता पा चुकी है, पर दक्षिण भारत की चार महान् भाषाओं—तैलुगु, तमिल, कन्नड तथा मलयालम में जो अनमोल रत्न भरे पड़े हैं, उनसे उत्तर भारतीय अब तक बिल्कुल अपरिचित रहे हैं। हिंदी जनता को उसका भी रसास्वादन करना चाहिये।

कर्नाटक (कन्नडभाषी प्रदेश) अपने कला-प्रेम के लिए प्रसिद्ध रहा है। संगीत की तो वह खान है। यहाँ तक कि दक्षिण भारत का संगीत—दक्षिणादि संगीत ही कर्नाटक-संगीत कहलाता है। हम हिंदी-भाषी जनता को उसके साहित्य की कुछ झलक दिखाना चाहते हैं।

श्री अ. न. कृष्णराव कन्नड भाषा के एक सुप्रसिद्ध कलाकार हैं। कन्नडभाषी आबालवृद्ध कोई ऐसा न होगा जो उनसे सुपरिचित न हो। उन्होंने दर्जनों उपन्यास, कहानियाँ, नाटक आदि लिखे हैं। आज हम उनके एक छोटे उपन्यास को पाठकों के सामने रख रहे हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में एक ऐसे कलाकार की जीवन-कहानी है, जिसने अपना जीवन ही कला के लिए अर्पण कर दिया है। इसमें कला के—सच्चे सौंदर्य के—रूप की विवेचना की गई है।

—अनुवादक

एक

दस बज गये, पर किसी को सुध न हुई। घड़ी अपना काम करती ही जाती थी। घण्टा और आधा घण्टा बजाकर वह आगे बढ़ती ही जाती थी। न तो रायसाहब ने, और न शामण्णा ने ही इस तरफ ध्यान दिया। भीतर के दालान में दहलीज के एक ओर बैठी हुई गौरम्मा बहू का मुँह एक बार देखकर चुप हो रही। भोजन ठंडा हो रहा है यह कहने की चिन्ता किसको है। सास को मालूम न हो इस तरह आँसू बहाती हुई बैठी हुई मीनाक्षम्मा को मालूम ही नहीं हुआ कि सास कितनी चिन्तित है।

रायसाहब का मन कन्नड के प्रसिद्ध कवि कुमारव्यास द्वारा लिखित 'महाभारत' में डूबा हुआ था। यह ग्रन्थ रावसाहब को अत्यन्त प्रिय था। उसमें से कर्ण का वृत्तान्त उन्होंने सैकड़ों बार सुना था। रावसाहब देख रहे थे कि एक तरफ तो प्रारब्ध का हाथ दिखाई देता था और दूसरी तरफ प्रारब्ध का हाथ दिखाई नहीं देता था। दोनों के बीच में पिसकर कर्ण का बुरा हाल हो रहा था। कर्ण के उज्ज्वल चरित्र पर रावसाहब मुग्ध थे और बार-बार उनके मुँह से 'वाह कर्ण' ये उद्गार निकल रहे थे। वे भीतर-ही-भीतर दुखी हो रहे थे कि कर्ण के उज्ज्वल चरित्र का अन्त कितनी विषादकर रीति से हुआ। कुन्ती माँ है। हाँ, वही पांडवों की माँ है और वही कर्ण की भी माँ है। वह कर्ण से शपथ कराती है—

"वत्स, मेरे इन पाँच बच्चों का सिर बचाकर दिखा, कौरवों की सेना का जो दुराग्रह है उसे छोड़, जो बाण एक बार छूट गया उसे दूसरी बार मत ले।"

मातृ-प्रेम के झन्झावात में फँसा हुआ कर्ण बोला, 'तथास्तु' और कुन्ती से विदा लेकर महल को लौट आया।

रावसाहब जोर से चिल्लाये, "कर्ण, तू बरबाद हो गया, भैया!" शामण्णा ने अगला पद्य प्रारम्भ किया। कई पद्य पढ़ने के बाद पुस्तक को बन्द करके उन्होंने आँखों से लगाया। रावसाहब ने आँखों के आँसू रोकते हुए सुँघनी की डिब्बी हाथ में ली। मुँह खोलने का साहस किसी को न हुआ। अभी वहाँ पर उन लोगों को ऐसा मालूम होता था कि कुन्ती, कर्ण और कृष्ण सामने खड़े हैं। गौरम्मा ने धीरे से कहा, "बेटा, दस बज गये ना। मंगला आरती करता है क्या?"

रावसाहब को अब होश हुआ, और बोले, "अभी करता हूँ।" उन्होंने हाथ, पैर और मुँह धोकर आचमन किया और पूजा के लिए तैयारी की। अपने इष्ट देवता और कुल-देवता की मूर्तियों के सामने खड़े होकर, आरती की थाली हाथ में लेकर, उसमें कपूर जलाकर गम्भीर और मधुर स्वर में गीत का गान किया।

सब घर वाले भी वहाँ खड़े रावसाहब का उपासना-गीत सुन रहे थे, और उन सबके शरीरों में बिजली-सी दौड़ गई। पहले तो राव-साहब का कद बड़ा लम्बा-चौड़ा था। वे पूरे साढ़े छः फुट ऊँचे थे। उनके अंग भी खूब हृष्ट-पुष्ट थे। उनकी चाल-ढाल से बड़प्पन टपकता था। उनकी बात-चीत से मन पर सहज उदात्त गाम्भीर्य की छाप पड़ती थी। उनके धारण किये हुए पीताम्बर और माथे पर लगे त्रिपुण्ड से उनका महान् व्यक्तित्व प्रकट होता था। चाहे रात के दस बज जाएँ चाहे ग्यारह, रावसाहब अपने हाथ से मंगला आरती किये बिना भोजन के लिए न उठते थे। शाम को संगीत या महाभारत सुनना ही चाहिए। उसके बाद मंगला आरती करके खीर आदि मीठा भोजन करके रावसाहब सोने जाते थे।

रावसाहब का नाम श्रीनिवासराव था। श्रीनिवास के साथ नाम

का सामान्य प्रचलित उत्तरार्द्ध 'राव' जोड़कर उनका नाम श्री निवासराव नहीं पड़ा था। उनका पूरा नाम श्रीनिवासमूर्ति था, और उस पूरे नाम से या श्रीनिवासय्या इस पूरे नाम से पुकारने पर भी लोग रावसाहब या राया यह आदर-सूचक उपाधि उनके नाम के आगे जोड़ते ही थे, और रावसाहब या राया कहकर ही उनको पुकारते थे। इस प्रकार राया उनके नाम का अंग नहीं, बल्कि पृथक् उपाधि थी। रावसाहब के पास उनके बड़ों की पैदा की हुई बहुत-सी जायदाद थी, और उन्होंने स्वयं भी बहुत-सी पैदा की थी। रावसाहब के बड़ों ने जिस ढंग से जायदाद पैदा की थी, वे भी उसी ढंग से पैदा कर सकते थे, किन्तु उन्होंने न्याय-मार्ग की एक सीमा निर्धारित करके अपनी कमाई घटा दी थी। बिना लिखा-पढ़ी के ही, जबानी बात पर ही हजारों रुपया कर्ज देकर उन्होंने अपना बहुत-सा रुपया गँवा दिया था। कोई हल्की बात सुनकर गुस्से से भरकर केम्पेगौडा की दो हजार रुपये की दस्तावेज टुकड़े-टुकड़े करके उन्होंने उसके मुँह पर फेंक दी थी। उनका स्वभाव था कि छोटी बात, छोटी चाल, छोटे मन की बात देखकर अपमान बरदाश्त न कर सकते थे, और क्रोध से आग-बबूला हो उठते थे।

पिछले दिनों सारे देश में जिस दुर्भिक्ष का तांडव हुआ, उसने उनके गाँव होसहल्ली में भी पदार्पण किया। लोगों का बुरा हाल था। पीने को पानी नहीं, और खाने को मुट्ठी भर रागी[1] नहीं। अनुकूल मौका देखकर पटेल और गौडा ने अपने यहाँ के संचित अन्न को मनमाने दाम पर बेचकर अपना घर खूब भरा। यह अन्याय देखकर रावसाहब बहुत दुखी हुए। उन्होंने पटेल और गौडा को बुलाकर बहुत समझाया। वे बोले, "जरा गाँव का और पड़ौस की मर्यादा

---

[1] मैसूर में गरीब लोगों का भोजन रागी है, जो कि मड़वा की तरह का एक मोटा अनाज है।

छोड़कर भ्रमणार्थ चल दिये। उनको कुमारव्यास के महाभारत का पाठ करने का शौक पहले ही से था। अब अपने ऊपर पड़ी हुई आपत्ति को भुलाने के लिए उन्होंने और भी जोर-शोर से महाभारत की कथा करनी शुरू कर दी। लोग भी उनसे महाभारत सुनने का अधिकाधिक आग्रह करने लगे, और वे भी महाभारत का पाठ अधिकाधिक करने लगे। कुछ वर्षों में ही शामण्णा की कीर्ति चारों ओर फैल गई। अपने भ्रमण में शामण्णा एक बार होसहल्ली आ निकले। तब रावसाहब ने उनको अपने घर में ही रखकर महाभारत का पाठ करवाया और उनकी बहुत इज्जत की। इज्जत अपेक्षा भी रावसाहब के अन्तःकरण ने शामण्णा के मन को अपनी ओर अधिक आकृष्ट किया। जब शामण्णा चलने की तैयारी कर रहे थे तो रावसाहब बोले, "इधर-उधर क्यों भटकते हो? शामण्णा, यहीं ठहर जाओ ना? मुझको भी रोज 'भारत' का पारायण करने की इच्छा है।" रावसाहब की माँ गौरम्मा ने भी शामण्णा से प्रार्थना की। इन लोगों की सरलता और हृदय की विशालता देखकर शामण्णा ने बाँधा हुआ बिस्तरा खोल दिया और वहीं रह गये। उस दिन से रावसाहब का घर ही उनका घर हो गया। मुफ्तखोर भट्ट बनकर रहना अच्छा नहीं है, यह सोचकर शामण्णा ने रावसाहब की जमीन के प्रवन्ध और हिसाब-किताब की देख-भाल, घर के इन्तजाम की देख-भाल आदि का काम अपने ऊपर ले लिया और इस प्रकार अपनी उपयोगिता बढ़ा ली।

रावसाहब के पास सब सम्पत्ति थी, सौभाग्य था और अनुकूल पत्नी थी। सब लोग उनका आदर भगवान् की तरह करते थे। फिर भी रावसाहब को, उनकी पत्नी को और उनकी माता को भी एक चिन्ता थी। वह यह थी कि उनके कोई सन्तान न थी। इस नन्दन-वन में यही कमी थी। अपने काम-काज में मग्न रहकर राव-

साहब तो इस दुःख को कुछ हद तक भुला भी सकते थे, पर सास-बहू को यह चिन्ता रात-दिन कचोटती रहती थी। पूजा, व्रत, यात्रा, सेवा, अनुष्ठान आदि लगातार होते ही रहते थे। कोई कुछ भी कहे तो वह अवश्य ही अनन्य भक्ति से किया जाता था। विदुरा श्वत्थ की यात्रा होती ही रहती थी। घाटी सुब्रह्मण्य को सोने का नाग चढ़ाने की मनौती की गई। तिरुपति वेंकटाचलपति के लिए अलग भेंट निकालकर रखी जाने लगी। बालसुब्रह्मण्य की सेवा के बाद गाँव के बच्चों को इतनी मिठाइयाँ बाँटी गईं कि वे उनसे खाई भी न गईं। इन सब व्रत, पूजा और उपवासों से मीनाक्षम्मा दिन-दिन दुबली होती जाती थी और उनकी निराशा बढ़ती जाती थी। वे कहती थीं, "सास जी, बच्चे मेरे भाग्य में ही नहीं लिखे तो बच्चे मेरे पेट से कैसे पैदा हो सकते हैं ?"

तब सास गौरम्मा, "ऐसा मत कह अम्मा, तू इस घर की सौभाग्य लक्ष्मी है। तेरी चाल-ढाल और तेरा पातिव्रत्य ही तेरी रक्षा करते हैं। उठ, उठ !"[१] यह कहकर उसको ढाढ़स देतीं। गौरम्मा बहू से बहुत प्यार करती थीं। उनको देखकर लोग यही खयाल करते थे कि ये माँ-बेटी हैं, सास-बहू नहीं। और हर तरह से मीनाक्षम्मा इस गौरव की अधिकारिणी थी। सास को अपने पूजा-पाठ, व्रत, नमस्कारादि काम के लिए छोड़ कर घर का सब काम-काज वे खुद ही करती थीं। काम करते-करते वे कभी थकती या ऊबती नहीं थीं। जिस तरह रावसाहब गाँव वालों के लिए साक्षात् नारायण थे, उसी तरह मीनाक्षम्मा उनके लिए लक्ष्मी थीं। गाँव में किसी पर कोई मुसीबत आती तो वह मीनाक्षम्मा के पास आकर अपनी विपद् गाथा सुनाता। पति-पत्नी, सास-बहू या भाई-

---

१. दक्षिण भारत में सभी स्त्रियों और छोटी लड़कियों को भी—पुत्री और पुत्रवधू को भी—आदर तथा प्यार प्रकट करने के लिए 'अम्मा' कहकर पुकारने का रिवाज है।

भाई में कुछ झगड़ा होता तो उसके निपटारे के लिए वे मीनाक्षम्मा के पास ही दौड़कर आते। मीनाक्षम्मा के मुँह से निकले हुए दो शब्द ही प्रबल-से-प्रबल समस्या को हल कर देते थे। गाँव-का-गाँव ही उनको आदर से 'माई जी' कहकर पुकारता था। किसी के घर में बीमारी हो, या और कोई कष्ट हो तो मीनाक्षम्मा सेवा के लिए खड़ी रहतीं। शौच-शुद्धि आदि कोई काम-काज भी, जिसमें घर वालों को शर्म या हिचकिचाहट होती, आगा-पीछा देखे बिना कर देती थीं। गाँव की लड़कियों को कोई कपड़ा बनवाना हो, या कोई कपड़ा खरीदना हो तो मीनाक्षम्मा को आना ही चाहिए। गाँव के लोगों का सुख-दुःख मीनाक्षम्मा के जीवन में ताने-बाने की तरह व्याप्त था। वे सब मिलकर एक हो गये थे।

गुणों में मीनाक्षम्मा जैसे अपने पति के योग्य पत्नी थीं, रूप में भी वैसे ही उनके योग्य थीं। सुन्दर गोल मुख था, कुछ लम्बी नाक थी, चौड़ा माथा था। उस माथे पर बड़ा कुंकुम का टीका फबता था। कानों में हीरे के कर्णफूल और नाक में हीरे की लौंग के अलावा और कोई कीमती गहना नहीं पहनती थीं। एक सादी साधारण साड़ी और चोली से ही वे सन्तुष्ट रहती थीं। कोई पूछता, "क्यों माई जी, भगवान् ने आपको क्या कमी की है। आप एक दिन भी कोई कीमती साड़ी नहीं पहनतीं!" तो वे अपने माथे पर का कुंकुम दिखलाकर कहतीं, "मेरी कीमती साड़ी और गहने सब यही है।"

सन्तान न होने का दुःख मीनाक्षम्मा को हमेशा ही कचोटता रहता था। 'मैं रावसाहब के वंश चलाने वाले किसी को जन्म नहीं दे सकी।' उनकी यह चिन्ता बढ़ती ही जाती थी।

एक दिन शाम को सास-बहू दालान में बैठी पूजा के दीपकों के लिए बत्ती बटती हुई गप लड़ा रही थीं। इधर-उधर की बातें करते-करते अन्त में मार्कण्डेय की कथा पर बात आ पहुँची। सास ने

बतलाया कि भृकंडु और मरुद्वती को सन्तानहीनता के दुःख ने किस तरह सताया। उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया कि पुत्रहीनों की परलोक में गति नहीं है। यह बात भी मीनाक्षम्मा के हृदय में काँटे की तरह चुभ गई। वे कई दिन से एक बात अपनी सास से कहना चाहती थीं, किन्तु संकोचवश नहीं कह सकती थीं। अब उन्होंने सोचा कि वह बात कहने के लिए यही उचित अवसर है।

"सास जी, एक बात है। यदि तुम कहो तो मैं कहूँ।"

"कह बेटी! उसके लिए इतना संकोच क्यों?"

"उसको बात न कहकर इच्छा कहना ठीक होगा। आपसे एक प्रार्थना है। यदि पूरा करने का वचन दें तो कहूँ।"

"गाँव-भर के लोगों की सब प्रार्थनाओं को पूर्ण करने वाली तो तू है। तेरे रहते मुझमें प्रार्थना पूरी करने की सामर्थ्य कहाँ? अच्छा कहा।"

"जरूर, ना? फिर अपना वचन वापस नहीं लेना चाहिये।"

"नहीं। कह!"

"देखो। मेरी उम्र होने को आई। अब बच्चे होने की सम्भावना कम है। मेरे करम में यह नहीं लिखा।"

"तेरी कौन-सी बड़ी उम्र हो गई? वैसाख में ३५ वर्ष पूरे होंगे। वह कौन-सी बड़ी उम्र है?"

"मुझसे वंश नहीं रुकना चाहिए। चिन्ता उनको कितना सताती है, यह बात आप जानती ही हैं।"

"हाँ उसके लिए क्या किया जा सकता है? इतना ही हमारे भाग्य में है। करम-रेख के ऊपर किसी का बस चल सकता है? भगवान् को आँखें खोलकर देखना चाहिये। मीना, तू यह फिक्र छोड़!"

"सास जी, मेरी इच्छा इतनी ही है। तुम किसी-न-किसी तरह उनसे यह कबूल करवा लो कि वे दूसरा विवाह कर लें। इतना मेरे

लिए करना ही चाहिए ।"

"अरे, दूसरा ब्याह ? अच्छा हुआ !"

गौरम्मा ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मीनाक्षम्मा यह माँग करेगी । उनकी यह प्रार्थना सुनकर बुढ़िया की आँखों में जल भर आया । वे बोलीं—"मीना, तू स्त्री नहीं, साक्षात् देवी है । हम बड़े पुण्यवान हैं कि तू हमारे घर आई । तेरे मन में क्या बात है ? पति की भलाई के लिए तू अपनी भलाई भुला देती है बेटी !"

"माता जी, उनकी भलाई के सिवा और किस बात में मेरी भलाई हो सकती है ? इतना तुमको करना ही चाहिए ।"

"मीना, तू ही इस घरली की मालकिन है । मेरे दो आँखें हैं, एक सीनू और दूसरी तू । तीसरी मैं कहाँ से लाऊँ ? क्या सीनू भी इसको मान जाएगा ?"[1]

"उनसे मनवाने का भार तुम पर है ।"

"अच्छी तरह सोच ले, मीना ! बिना सोचे एकदम कोई काम नहीं करना चाहिए ।"

"सास जी, और सोचने-विचारने की अब कोई जरूरत नहीं । आप उनसे एक शादी करा लीजिए । बाकी सब मैं देख लूँगी । आने वाली मेरी छोटी बहन होगी सौत नहीं, उस पुण्यात्मा स्त्री के धर्म से घर के लिए एक लड़का हो तो काफी है ।"

गौरम्मा को कोई बात नहीं सूझी । वे बत्तियों की टोकरी उठाकर रसोईघर की तरफ चली गईं । मीनाक्षम्मा ने निश्चिन्तता की शान्ति धारण कर ली ।

---

१. प्यार से श्रीनिवास को माँ 'सीनू' कहकर पुकारती थीं ।

पशुवत् था। पिताजी ने खून-पसीना एक करके कमा-कमाकर रखा था। उसको खा-खाकर मैं साँड की तरह मुटाता जाता था। मीना ने मेरे घर में आकर मुझे मनुष्य बनाया। मुझको इस योग्य बनाया कि मैं अपनी इज्जत आप कर सकूँ और इहलोक में तथा परलोक में अपनी गर्दन उठाकर चल सकूँ। क्या मैं अब उसका जीवन बरबाद कर दूँ? जिसको वह अपने प्राण से भी ज्यादा समझती है, ऐसे उसके प्रेम को क्या मैं टुकड़े-टुकड़े करके बखेर दूँ?"

"वे स्वयं ही स्वीकार करके कहती हैं ना?"

"यह उसका बड़प्पन है। वह हमेशा वैसी ही है, शामा! सबके हित और सुख के लिए रास्ता तैयार करके स्वयं पीछे हट जाती है।"

"सोच लीजिए, महाराज! जब तक आप स्वीकार न करेंगे, तब तक माँजी को नींद नहीं आयेगी!"

इस बातचीत के बाद रायसाहब फिर चहलकदमी करने लगे। माता ज़ी ने आकर जब बोलना शुरू किया तभी उनको होश हुआ। माता और पुत्र में बहुत विवाद हुआ।

माता जी बोलीं, "बेटा, क्या मुझे अपने पोते को आँख भरकर देखना नहीं मिलेगा।"

"हाँ माँ, परन्तु·········।"

"परन्तु-वरन्तु मत कर बेटा! मीना ने भी स्वीकार कर लिया है। हमेशा मालकिन तो वही रहेगी। वे दोनों सगी बहनों की तरह प्यार से रहेंगी, तो तुझको क्या सोच है? अपनी मीना को मैं खूब जानती हूँ। कोई भी घर आयें उसकी इज्जत और कद्र करके ही जाते हैं। तुझको किस बात का डर है? सीनू भैया, इस एक बात को स्वीकार कर ले। इससे सबको सन्तोष होगा, और सबकी इच्छा पूरी होगी।" यों कहकर माता जी ने दीनता से विनती की।

रायसाहब का दिल धड़कने लगा। माता जी की बात को सुनकर

उन्होंने खयाल किया कि कर्ण ने जैसे दुर्योधन की बलि दे दी वैसे ही मैं मीनाक्षम्मा की बलि दे रहा हूँ। उनकी आँखों में आँसू भर आये।

"इस एक बात को भूल जाओ अम्मा! तुम जिसको चाहो उस लड़के को गोद ले लूँ।"

"कहीं ऐसा भी होता है। किसी का बच्चा लाकर पालने पर वह क्या हमारा हो सकता है। इस एक बात को स्वीकार कर ले। मैं बुढ़िया हूँ, मेरे जीवन के थोड़े ही दिन बाकी हैं। बेटा, मेरी बात अस्वीकार करके मुझे दुःख मत दे!"

माता की बातें कटार की तरह रायसाहब के दिल में चुभने लगीं। रायसाहब जब सोचते-सोचते थक गये तब अन्त में लाचार होकर बोले, "तुम्हारे जी में जो आवे, सो करो माता जी!" गौरम्मा बेटे को जी भरकर असीसती हुई और अपनी सफलता पर मुस्कराती हुई यह शुभ समाचार सुनाने के लिए मीनाक्षम्मा की ओर चलीं।

दो

आठ ही दिन में रावसाहब बहुत कमजोर हो गये। खान-पान में उनकी रुचि कम हो गई। मन में कोई चिन्ता रखकर भीतर-ही-भीतर खिन्न रहने लगे। बीच के हाल में टहलते रहते। खड़े-खड़े उनको अपने शरीर की सुध-बुध न रहती। शामण्णा यह सब देखते, पर अपने-आप ही बात शुरू करते डरते। रावसाहब का स्वभाव कोई बात छिपाकर रखने का नहीं। ऐसी हालत में जब वे अपने-आप कुछ न कहकर आठ-दस दिन से चुप हैं तो शामण्णा डरते थे कि मैं ही पहल करके पूछूँ तो यह अनुचित हस्तक्षेप होगा। किन्तु रावसाहब की हालत करुणाजनक थी। उनकी आँखों में दिखाई देने वाले दुःख को देखकर हर किसी को उन पर तरस आता। अन्त में शामण्णा ने अपना दिल मजबूत किया। उन्होंने सोचा कि 'यदि राव-साहब ने अपने दुःख का कारण कहा तब तो अच्छा ही है। और यदि न कहकर मुझको दो-चार खरी-खोटी भी सुनाईं तो उससे मेरी कौन-सी बेइज्जती हो जायगी। और यह निश्चय करके वे बीच के हाल में आकर खड़े हो गये। दो-तीन बार शामण्णा को वहाँ खड़ा देखकर भी रावसाहब चुप हो रहे, पर शामण्णा के वहाँ से हटने का कोई लक्षण दिखाई न दिया।

तब रावसाहब ने ही बात शुरू की, "शामण्णा, क्यों आये हो? क्या खबर है?"

"यही पूछने के लिए आया हूँ। मैं आठ दिन से देख रहा हूँ। अब रुक नहीं सकता। क्या बात है, यह पूछने के लिए आया हूँ।"

रावसाहब ने लम्बी साँस ली।

"यदि कहने की बात हो तो कह देना अच्छा है। मन हल्का हो जायगा।"

"क्या हल्का हो जायगा? सुनो शामा! मीना ने अम्मा से एक बात कही है। वह बात अम्मा ने मुझसे कही है। अगर तुम होते तो क्या करते?"

"मुझे मालूम नहीं कि बात क्या है?"

"घर की बात है। उसके बच्चे पैदा नहीं हुए, इसलिए मीना ने मेरी दूसरी शादी कराने के लिए अम्मा से कहा है। कहीं ऐसा भी होता है शामा?"

"माता जी ने मुझसे भी कहा था। मैं सोचता था कि ठीक मौका देखकर आपसे विनती करूँ। रावसाहब अब आप क्या कहते हैं?"

"जो कहना है वह सामने दिखाई दे रहा है। मीना मेरे घर की भाग्य-लक्ष्मी है। बच्चे न भी हों तो कोई चिंता नहीं, पर मैं उसकी एक सौत नहीं ला सकता।"

"यदि वे सौत समझें तभी तो कठिनाई है। वे तो छोटी बहन समझेंगी। उन्होंने कहा है कि आप इस विषय में कुछ सोच न करें।"

"वह ऐसा खयाल कर सकती है। मीना की उदारता को मैं नहीं देखता क्या? किन्तु भैया, आने वाली स्त्री को भी देखना चाहिये न? इसके अलावा, शामा, इस उम्र में मेरे लिए शादी बड़ी लज्जा-जनक है।"

"महाराज, आपकी ऐसी कौन-सी उम्र हो गई? आप भगवान् की तरह लगते हैं। माता जी की तरफ की ही एक लड़की है। उसी को ही वे ले आयेंगी। तब आपका भी सन्देह दूर हो जायगा।"

"शामा भैया, यह बहस के द्वारा मनवाने की बात नहीं है। मीना मेरी सिर्फ पत्नी ही नहीं। मेरे जीवन में उसका स्थान ही भिन्न है उसको कैसे हिलाया जा सकता है, बताओ! मीना के आने के पहले मैं

तीन

रायसाहब के घर का विवाह ठहरा, और फिर स्वयं रायसाहब का; खूब धूमधाम होनी ही चाहिए। होसहल्ली में सारे गाँव की इस तरह से तृप्ति आज तक कभी नहीं हुई। सब लोग जेवनार आदि की प्रशंसा शतमुख से कर रहे थे। ब्राह्मणों को भी दान-दक्षिणादि से खूब सन्तुष्ट किया गया और शादी खत्म हो गई।

लड़की दूर की नहीं थी। यों कहना चाहिए कि घर की ही थी। मीनाक्षम्मा ने अपनी मामी के छोटे भाई की लड़की को ही चुन लिया था। मीनाक्षम्मा के सगे मामा कडले कृष्णप्पा ने ही सावित्री को पाल-पोसकर बड़ा किया था। सावित्री के छुटपन में ही उसके माँ-बाप मर गये थे, इसलिए कृष्णप्पा ने साले की लड़की को अपनी ही लड़की की तरह पाल-पोसकर बड़ा किया और सिखाया-पढ़ाया था। कृष्णप्पा की आर्थिक स्थिति कोई बहुत अच्छी तो नहीं थी, पर खराब भी न थी। इसके अलावा वह चार गाँवों का पटवारी भी था। साल-भर के लिए अनाज और खर्चे के लिए पैसा मिल जाता था। उसके अपनी कोई सन्तान न थी। सावित्री को ही अपनी सन्तान से भी बढ़कर समझता और प्यार करता था। सवित्री को सत्रहवाँ साल लग जाने पर भी अभी तक कोई योग्य वर नहीं मिला था। गाँव-देहात में कन्या के सयानी हो जाने के बाद शादी करना अत्यन्त कठिन था। शहर के लड़के तो गाँव की लड़की से शादी करना पसंद नहीं करते थे। कृष्णप्पा वर की खोज में घूम-घूमकर थक गये थे। लड़की देखने के लिए आने वालों को रेल का खर्चा और बस का खर्चा देते-

नमस्कार किया ।

जीजी, यह क्या किया ?......"

"सातू, कोई चिन्ता नहीं । कर्णफूल मैंने पहने तो क्या, और तूने पहने तो क्या ? सब एक ही बात है ।"

इस तरह उसकी तसल्ली करके बात का रुख दूसरी तरफ पलट दिया । रायसाहब भी उसी समय घर में आ गये, इसलिए दोनों उनके लिए जल-पान की तैयारी करने रसोईघर की तरफ चल दीं ।

रायसाहब हाथ-पैर धोकर आसन पर बैठ गये । सावित्री जल-पान की तश्तरी सामने रखकर चली गई । और फिर वापस आकर उसने रायसाहब के सामने काफ़ी रख दी । रायसाहब ने कहा, "जरा मीना को बुलाओ !"

रायसाहब ने काफ़ी का बरतन हाथ में पकड़कर मीना की ओर घूरकर देखा । मीनाक्षम्मा जरा घबरा-सी गईं ।

"मेरी ओर ऐसे क्यों देख रहे हैं ?"

"कुछ नहीं । तुम्हारे कान की ओर देख रहा था और सातू के कान की ओर देख रहा था ।"

"मेरा क्या है ? लड़की उसको धारण करे, इसलिए उसको पहना दिये । मेरे कानों में हीरे के कर्ण फूलों की अपेक्षा लाल के ये कर्णफूल ही ज्यादा फबते हैं ।"

रायसाहब मीनाक्षम्मा का हाथ पकड़कर उसको अपने पास बिठलाकर गद्गद ध्वनि से बोले—

"मीना, ऐसा मत करो ! चाहो तो उसके लिए हीरा जड़ा एक जोड़ी नया कर्णफूल मँगा दूँ । अपनी कोई चीज कम-ज्यादह मत करो । मेरी तुमसे यही प्रार्थना है । इतना स्वीकार करोगी या नहीं ।"

मीनाक्षम्मा ने सिर झुका लिया और उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने पति के मुख की ओर देखा और उनके मुख से 'क्षमा कीजिये।' सिर्फ़ ये दो शब्द निकले। बात यहीं तक रह गई। पर हृदय का संदेश हृदय तक पहुँच गया।

चार

एक पेट से पैदा हुई दो बहनें भी मीनाक्षम्मा और सावित्रम्मा की तरह नहीं रह सकतीं। सावित्रम्मा अपनी बड़ी बहन के शब्दों को वेद-वाक्य समझती थी। उसको पूरी स्वतंत्रता थी, फिर भी वह जीजी से पूछे बिना कोई काम नहीं करती थी। दोनों बहुएँ इस तरह परस्पर आश्रित होकर एक ही डाल के दो फूलों की तरह अपूर्व प्रेम से रहती हैं, यह देखकर गौरम्मा के आनन्द का पारावार न था।

पहले-पहल तो रायसाहब के लिए नई पत्नी के साथ व्यवहार करना बहुत कठिन था। मीनाक्षम्मा उनके जीवन का अंग बन गई थी। किसी चीज़ की जरूरत हो तो वे बिना संकोच के उनसे कह देते थे। सावित्री हरेक तरह से भोली थी, उसको कुछ अनुभव भी न था। रायसाहब सोचते थे कि उसके साथ बँधी हुई मेरी ज़िन्दगी क्या सुखपूर्वक बीत सकेगी। किन्तु अगले ही क्षण सावित्री का मुग्ध मनोहर रूप उनके संशय को दूर कर देता था।

रायसाहब और उनकी माता को जिसकी इच्छा थी, उसका समाचार मिलने में बहुत देर नहीं लगी। मीनाक्षम्मा ने ही वह समाचार रायसाहब तक पहुँचाया। रायसाहब तो आनन्द के मारे आकाश में उड़ने लगे। गौरम्मा में भी मानो नई जान आ गई।

रायसाहब इतनी जल्दी एक और शुभ समाचार सुनने के लिए तैयार नहीं थे। सावित्रम्मा का समाचार मिले हुए छै महीने भी नहीं बीते थे। मीनाक्षम्मा के गर्भ-लक्षण का समाचार भी मिल गया। अब रायसाहब मन में कहते थे कि "मैंने दूसरे विवाह में जल्दबाजी की,"

और पल-भर बाद "उसका उत्तरार्ध ही है ना" यह कहकर समाधान कर लेते थे।

रायसाहब के घर में नई शोभा आ गई। सीमन्त[1] के बाद सीमन्त और नाम करण के बाद नामकरण हुआ। उनका घर तो पहले ही लोगों से भरा था। अब इतने जने आ गये कि उसमें समा नहीं पाते थे। सावित्रम्मा के प्रसव के लिए उनकी मामी आ गईं। मीनाक्षम्मा की सेवा के लिए गाँव-भर की महिला-मंडली आ जुटी। राजसी उपचार से भी बढ़कर उनकी सेवा होने लगी। उनकी सेवा के लिए हाथ के लिए अलग और पैर के लिए अलग, इस तरह ढेर-की-ढेर स्त्रियाँ आ जुटीं।

रामचन्द्र अपने छोटे भाई लक्ष्मण से तीन मास बड़ा था। इस नामकरण के मामले में गौरम्मा ने किसी की बात न चलने दी। उन्होंने हठ पकड़ा कि "दोनों भाइयों को राम-लक्ष्मण-जैसा होना चाहिये। इसलिए सातू और मीना के बेटों के नाम हम राम और लक्ष्मण रखेंगे।" गौरम्मा की इच्छा थी कि एक माँ के पेट से पैदा न होकर भी जैसे राम और लक्ष्मण एक-दूसरे के सुख-दुःख में अभिन्न होकर सहोदर भाइयों के आदर्श प्रेम की मूर्ति थे वैसे ही मेरे सीनू के बेटे भी हों।

पहले तो रायसाहब घर में आते भी न थे, पर अब तो उनके लिए घर छोड़कर बाहर जाना ही कठिन था। पटवारी, कानूनगो, तहसीलदार आदि सरकारी अधिकारियों के आने पर भी वे घर छोड़कर नहीं गये और उनको अपने घर पर ही बुलवाकर, खूब शान से उनकी दावत करके, उन्हें घर पर ही ठहराकर सब कागज़-पत्र तैयार करवाये।

---

१. गर्भ के आठवें मास में होने वाली एक रस्म को 'सीमन्त' कहते हैं।

रायसाहब को ताश खेलने का बड़ा शौक था। दो दिन में कम-से-कम एक बार नहला-गुलाम से न खेलें तो उनका खाना नहीं पचता था। ताश के खेल को वे हँसी में गीता-पारायण पुकारा करते थे। राम-लक्ष्मण के लालन-पालन में वे गीता-पारायण भी भूल गये। एक दिन सामण्णा ने मज़ाक में कहा, "रायसाहब, आपने तो गीता-पारायण की ओर ध्यान देना ही छोड़ दिया।" तब रायसाहब ने हँसते हुए उत्तर दिया, "रामायण आरम्भ हो गई, अब गीता क्यों।"

रायसाहब नहला-गुलाम की गीता को तो भूल गये, पर कुमार-व्यास के महाभारत को नहीं भूले। महाभारत के पारायण में रायसाहब की रुचि और भी बढ़ती गई। खेलने वाले बच्चों को सामने सुलाकर मजे से कर्ण-वृत्तान्त, अक्षय पात्र, राजसूय याग, द्रौपदी-वस्त्रापहरण आदि के प्रकरण पढ़वाकर आनन्द से झूमने लगते थे। रायसाहब की इच्छा थी कि मेरे बच्चे इसी वातावरण में पलकर कर्ण, कृष्ण, अभिमन्यु और अर्जुन की तरह महापुरुष बनें। इसी सम्बन्ध में उनको अपने बचपन की याद आ जाती थी कि उनके पूज्य पिता उनको पास बैठाकर 'अमरकोष,' 'सुभाषित शतक,' 'महाभारत,' 'भागवत,' 'रामायण' आदि के चुने हुए उत्तमोत्तम श्लोक याद कराया करते थे।

एक दिन रायसाहब बच्चों को खिला रहे थे। तब उन्होंने मज़ाक में सावित्रम्मा से पूछा—

"सातू, तेरा बेटा बड़ा होकर क्या बनने से तुझे खुशी होगी।"

सावित्रम्मा पहले तो शर्माई और मीनाक्षम्मा का मुँह देखने लगी। मीनाक्षम्मा ने जब आँख के इशारे से उसको धीरज बँधाया तो धीरे से बोली, "मैं चाहती हूँ कि वह बड़ा अफ़सर बने।"

रायसाहब ने शाबाश कहकर मीनाक्षम्मा की ओर मुँह करके कहा, "और मीना, तुमको ?"

मीनाक्षम्मा कुछ देर सोचती रही। उनका मुख गम्भीर हो गया।

वे बोलीं —

"मेरा बेटा कुछ भी बने, यदि वह गरीबों का अवलम्ब हो तो मुझे खुशी होगी।"

रायसाहब के मुख से शब्द नहीं निकले। सिर्फ़ गौरम्मा बोलीं, "तूने सोने की-सी बात कही है।"

पाँच

दो वर्ष बीत गये। मीनाक्षम्मा ने शान्तमूर्ति की एक पुत्री को जन्म देकर पति को दिया। रायसाहब ने उसका नाम 'शान्ता' रखा। सावित्रम्मा ने, मैं भी पीछे न रहूँ इसलिए दो वर्ष बाद एक लड़के को जन्म देकर पति को दिया, जिसका नाम गोपाल रक्खा गया। अब रायसाहब की ज़िम्मेदारी भी बढ़ती चली गई। बच्चों वाला घर ठहरा। उसमें कोई-न-कोई छोटी-मोटी बीमारी लगी ही रहती थी। आज रामू को बुखार आ गया, आज शान्ता को खाँसी है, आज लक्ष्मण ने हठ पकड़ रखी है, इस तरह कुछ-न-कुछ हमेशा लगा ही रहता था।

एक दिन अचानक बैठे-बिठाये गोपाल की पसली चलने लगी। बच्चे ने आकाश की ओर आँखें फैला दीं, और उसका साँस रुकने लगा। डाक्टर भी घबरा गया और रबर की नली बच्चे की छाती पर लगाकर उसने भी अपनी आँखें आकाश की ओर फैला दीं। शामण्णा कहीं गये हुए थे। जब उन्होंने यह ख़बर सुनी तो दौड़कर आये और बच्चे को देखा। उन्होंने फौरन एक पत्ते पर एक काली दवा शहद में मिलाकर बच्चे को चटा दी। माँ-बाप के देखते-ही-देखते दस-पन्द्रह मिनट में बच्चे की दशा सुधरने लगी और बच्चा ठीक तरह से साँस लेने लगा। आध घंटे के बाद फिर वही दवा चटा दी और बच्चा आराम से सो गया। शामण्णा बोले, अब कुछ चिन्ता नहीं महाराज, बच्चे की जान बच गई।''

अपनी आँखों के सामने ही यह करामात देखकर रायसाहब को जो

अचरज हुआ सो तो हुआ ही, एम. बी. बी. एस. डाक्टर भी चकरा गया। उसने अपने पेशे की गम्भीरता को भुलाकर पूछा, "शामण्णा वह क्या दवा थी ?"

शामण्णा ने हँसी में उड़ाकर कहा, "जिसको आप 'किसी काम का नहीं' कहते हैं, उसी आयुर्वेद की एक छोटी-सी औषध थी।"

अगर रायसाहब बीच में पड़कर डाक्टर से दो मीठी बातें कहकर उसको वहाँ से दूर न भेज देते, तो डाक्टर और शामण्णा में जोर की लड़ाई शुरू हो जाती।

रायसाहब के घर में हर तरह की सुविधायें प्राप्त थीं और उस पर भी अत्यन्त प्यार करने वाले माँ-बाप की देख-भाल प्राप्त थी। इन दो बातों के होते बच्चों को अच्छी तरह फूलना-फलना ही चाहिये।

अब राम-लक्ष्मण की स्कूल में दाखिल होने की उम्र हो गई। घर में खीर पकाकर, भगवान् के सामने घी का दिया जलाकर उन दोनों को स्कूल भेजना आरम्भ कर दिया।

सावित्रम्मा की मनोकामना पूरी होने के चिन्ह प्रारम्भ से ही दिखाई देने लगे। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" रामचन्द्र हरेक वर्ष अगली श्रेणी में मज़े से चढ़ता गया। लक्ष्मण की चाल उतनी सीधी नहीं थी। प्रारम्भ से ही उसे गणित के नाम से ही जूड़ी चढ़ती थी। पाठ्य-पुस्तकों में के कन्नड़-पद्यों को राग से गाने में लक्ष्मण सबसे आगे था, किन्तु बाकी पाठों में उसका स्थान श्रेणी में सबसे पीछे रहता था। कहानी कहना और सुनना, गाने गाना और सुनना, इन बातों में उसका मन लगता था। रायसाहब का लड़का, बड़े आदमी का लड़का ठहरा, इसलिए स्कूल के अधिकारी उसको हरेक साल ऊपर की श्रेणी में चढ़ा देते थे।

रामचन्द्र के स्वभाव में ही अनुशासन था। वह हरेक काम व्यवस्थित रूप से करता था। पुस्तकों पर मोटा कागज़ चढ़ाकर उन्हें

साफ़ और सुरक्षित रखता, स्कूल में घर के लिए दिये हुए काम को कभी कल पर न छोड़ता, अगले दिन के स्कूल के पाठ को हमेशा स्कूल में पढ़ने से पहले ही घर पर तैयार कर लेता और कठिन शब्दों का अर्थ कोष में देख लेता, तब स्कूल जाता। उसके हरेक काम में एक क्रम और एक नियम था। इसके अलावा जितना चाहे उतना भीतर घुसने की शक्ति रामचन्द्र में पहले से ही बढ़ती गई थी। इसके विषय में यदि कहा जाय कि यह शक्ति उसको अपने पिता से परम्परागत रूप में प्राप्त हुई थी, तो गलत न होगा। फुटबाल के मैदान में वही आगे रहता, वही टीम का कैप्टेन होता। इसके अलावा सेंटर फ़ारवार्ड स्काउट दल में वही दलनायक (पेट्रोल लीडर) रहता। वाद-विवाद सभा में वही पक्षनायक होता। क्लास में वही मौनीटर होता। दूसरों पर हुकूमत करने की योग्यता, अवसर और चपलता उसको शुरू से ही प्राप्त थीं। स्कूल में बोर्ड पर लिखने की चाक के टुकड़े मौनिटर के पास रहते हैं, इसलिए चाक के लिए लड़कों को उसी पर आश्रित रहना पड़ता था। स्काउट-दल के लड़के स्कूल की रोजाना ड्रिल में गैरहाज़िर हो सकते थे। इस सुविधा को पाने के लिए अनेक सुस्त लड़के स्काउट-दल में शामिल हो जाते थे। यदि वे गैरहाज़िर होना चाहें तो उन पर दलनायक की कृपा-दृष्टि रहनी चहिये। इसलिए भी लड़के रामचन्द्र का आश्रय लेते थे।

लक्ष्मण में अपने बड़े भाई के इन दोनों गुणों का सर्वथा अभाव था। उसके मन में आ जाय तो वह आठ दिन का पाठ एक ही दिन में तैयार कर लेता था। उसके मन में न आये तो महीने भर तक वह पुस्तक को हाथ भी न लगाता था। पुस्तकों को खो देना, जो पुस्तकें उसके पास हैं भी उनके पृष्ठों को खो देना, उसके लिए मामूली बात थी। लक्ष्मण भोजन करके सीधे स्कूल को शायद ही कभी जाता हो। रास्ते में कहीं सपेरा दिखाई दिया, मारम्मा की मूर्ति उठाये

चाबुक से तड़ातड़ अपने ही शरीर को पीटने वाले, यक्षिणी, बाजी-गरों, नटों का खेल दिखाने वाले, एक तम्बूरा या एकतारा लेकर गाते भीख माँगते फिरने वाले व ऐसे ही कोई मिल गये तो बस, उस दिन का स्कूल का पाठ व घर का पाठ सब लक्ष्मण को भूल जाता था।

रामचन्द्र जैसा दोस्त बनाने वाला था, लक्ष्मण वैसा ही एकान्त-प्रेमी था। रामचन्द्र को चारों तरफ से आदमी घेरे रहें, उसकी प्रशंसा करते रहें तो वह बहुत खुश होता। इसके विरुद्ध लक्ष्मण से कोई बात-चीत करना चाहता तो वह गुस्से से भर जाता। भाषा मन के भावों को प्रकट करने का साधन है, यह बात उसकी समझ में ही नहीं आती थी। यह अपने-आप ही गाने लगता था। गाँव के बाहर के टीले पर बैठकर सायंकाल के समय पश्चिमाकाश के नाना रंगों को देखता हुआ बिलकुल, आत्म-विस्मृत हो जाता। नदी के साफ पानी में पैर लटकाकर बैठ जाता। उसमें की मछलियाँ प्यार से परस्पर खेलतीं, उसके पैरों को काटतीं, इस सब दृश्य को देखते हुए उसको अपने तन की सुध-बुध विलकुल न रहतीं।

स्कूल में भी लक्ष्मण को कोई मित्र नहीं मिले। यदि उसके कोई मित्र गिने जा सकते थे, तो वे थे शामण्णा। उनके महाभारत के पाठ से लक्ष्मण को बड़ा प्रेम था। अपने आनन्द को शब्दों से प्रकट करने में उसे संकोच होता था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि किसी-न-किसी दिन मैं शामण्णा की तरह महाभारत का पाठ करना सीखूँ। वह शामण्णा की पढ़ने की रीति का अनुकरण करके उसी ढंग से अपने पाठ्य पद्यों को पढ़ता और इस तरह अपनी भक्ति प्रदर्शित करता।

शामण्णा के पास एक बड़ी सम्पत्ति थी; एक सुन्दर तम्बूरा। मैसूर के एक संगीताचार्य उनका महाभारत-पठन सुनकर ऐसे मुग्ध हुए कि वे जिस तम्बूरे का स्वयं उपयोग करते थे, वह मागडी का बना हुआ तम्बूरा प्रसन्न होकर उन्होंने शामण्णा को दे दिया। उन

संगीताचार्य के घराने में वह तम्बूरा चार पीढ़ियों से चला आता था। उस वंश-परम्परागत सम्पत्ति को उन्होंने एक संदेश के साथ ही दिया था। उन्होंने देते समय शामण्णा से कहा, "शामण्णा जी, आपकी विद्या और आपके भरत-वचन की कला के लिए यह मेरी भेंट है। कितना ही कष्ट आने पर भी कभी इसको बेचना मत। और परमात्मा के यहाँ से बुलावा आने पर अपने किसी योग्य शिष्य को दान कर देना और उससे भी यही वचन ले लेना।" "मैं नहीं बेचूंगा" यह वचन लेकर ही उन्होंने शामण्णा को तम्बूरा दिया।

उस तम्बूरे को देखते ही लक्ष्मण पुलकित हो उठता। उसके स्वर ठीक करके शामण्णा जब बजाने लगते तो मानो लक्ष्मण की नसें भी झंकृत हो उठतीं। उद्वेग से उसकी नब्ज तेज चलने लगती। एक बार रामचन्द्र ने शामण्णा और उनके तम्बूरे की हँसी उड़ाई, उसके लिए लक्ष्मण से झगड़ा हो गया। रामचन्द्र ने शामण्णा को तम्बूरे वाला दासय्या कहा तो लक्ष्मण ने उसको तब तक नहीं छोड़ा जब तक कि उसने माफी नहीं माँगी।[१] ऐसी छोटी-मोटी घटनाओं से रामचन्द्र और लक्ष्मण का भेद-भाव बढ़ता ही गया। रामचन्द्र को बड़ा घमंड था कि मैं हरेक वर्ष परीक्षा में जरूर ही पास हो जाता हूँ। इस बात से लक्ष्मण को ईर्ष्या नहीं थी। वह सिर्फ इतना ही चाहता था कि रामू मेरी उपेक्षा न करे और इतने से ही वह सन्तुष्ट था।

दोनों लोअर सैकंडरी परीक्षा की श्रेणी में पहुँच गये। स्कूल के अधिकारियों ने रामचन्द्र को परीक्षा के लिए भेजा, किन्तु यह सौभाग्य लक्ष्मण को प्राप्त नहीं हुआ। जब रामू ने "देखा ना ?" यह कहकर लक्ष्मण की हँसी उड़ाई तो लक्ष्मण ने अपने सहज सरल स्वभाव से उत्तर दिया, "हाँ, भैया तू होशियार है, तुझे परीक्षा के लिए चुन

१. कर्नाटक में बाजा लिये भजन गा-गाकर भीख माँगने वालों को दासय्या कहते हैं।

लिया। मेरे बारे में तो मालूम ही है कि मैं बुद्धू, सुस्त और निकम्मा हूँ।"

मीनाक्षम्मा को बड़ा दुःख था कि मेरा बेटा उन्नति नहीं कर रहा है और हरेक बात में पीछे ही रहता जाता है। उन्होंने मौका देखकर रायसाहब से यह बात कही भी। तब रायसाहब ने उनका मन बहलाने के लिए कहा कि "लड़के को चार दिन खेलने दो। इस वर्ष नहीं तो अगले वर्ष परीक्षा में बैठेगा। उसकी कौन-सी उम्र बीत गई?"

गाँव के हनुमान जी के मन्दिर के आगे का बरामदा गाँव का भजन-मन्दिर था। साधारणतः गाँव के छोटे लोग और कुछ बड़े लोग प्रतिदिन वहाँ इकट्ठे होकर भगवद्-भजन करके समय बिताते। प्रातःकाल के समय कुछ निठल्ले वहाँ जमा होते और ताश, शतरंज आदि खेलते रहते। शनिवार को सायंकाल का हरि-भजन ही असली और कुछ महत्व का हरि-भजन होता था। उस दिन प्रसाद बँटता था, इसलिए लोग भी शनिवार को बहुत जमा होते। प्रसाद बाँटने के लिए सबकी एक-एक सप्ताह की बारी होती थी, अतः हरेक सप्ताह अलग-अलग तरह का प्रसाद होता था। शनिवार को भजन भी जोर का होता था। रामस्वामी आयंगर के घर से इमली-भात आता, कृष्णमूर्ति के घर से केले का रसायन आता, षानभोग के घर से कोसंबरि[1] आती, वेंकटेश के घर से इमलीचिउड़ा आता। किन्तु लक्ष्मण का प्रसाद सबसे अधिक भारी और शानदार होता। दूसरे लोग सिर्फ इतना देते कि स्वाद देखा जा सके, पर लक्ष्मण की बारी के दिन भरपेट खाने को मिलता। सब लोगचाहते थे कि प्रति सप्ताह लक्ष्मण का प्रसाद मिला करे, पर भजनमन्दिर के नियम ऐसा नहीं होने देते थे।

हनुमान जी के देवालय के सामान के अलावा भजन-मन्दिर के सामान में एक तम्बूरा, एक हारमोनियम, एक फिडिल (वायोलिन), एक श्रुति

---

१. **अमरूद, खीरा आदि फल और भिगोई हुई मूँग की दाल मिलाकर बनाया हुआ एक तरह का पदार्थ।**

का हारमोनियम, एक मृदंग, एक तिकोना घंटा और एक जोड़ी मंजीरे थे। लड़कियों के स्कूल के संगीताध्यापक ही उस गाँव के संगीताचार्य थे। वे ही हारमोनियम बजाते थे। गाँव की नर्तकी के लिए मृदंग बजाने वाला वेंकटस्वामी ही मृदंग बजाता था। रामस्वामी आयंगर ने "मैं चार दिन में मैसूर जाकर संगीत सीख आता हूँ" यह शर्त बदी थी। वे ही यहाँ फिडिल बजाते थे। इन सबके साथ मुख्यतः रंगदास और शामण्णा गाते थे। बाकी सब एक-एक श्लोक पढ़ते अथवा किसी भक्त कवि का बनाया नाम-कीर्तन करते थे।

एक दिन शनिवार के सायंकाल की बात है। हमेशा की तरह भजन-मंडली जमी थी। उस दिन लक्ष्मण की प्रसाद की बारी थी। लक्ष्मण चने की गुगरी और दही-भात बनवाकर लाया है, यह खबर सारे गाँव में फैल गई थी। आधा गाँव वहाँ जमा हो गया था। लोगों के बीच में आज एक नया चेहरा दिखाई देता था। सब लोग एक-दूसरे से पूछते थे कि यह कौन है ? इस नये व्यक्ति को कोई भी नहीं जानता था। उस भीड़ में बैठे हुए बस-कंडक्टर ने बतलाया कि यह आदमी टुमकूर का टिकट लेकर बस में बैठा और "महाभारत पढ़ने वाले शामण्णा जिस गाँव में रहते हैं, वह गाँव क्या यही है ?" यह पूछकर यहाँ उतर गया था। शामण्णा ने चार छोटे भजन गाये। नवागन्तुक ने थोड़ी जगह निकालकर आगे आकर कहा, "अब कुछ महाभारत का पाठ हो।" सब लोग नवागन्तुक को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे। फटे-पुराने कपड़े पहने, हफ्तों से दाढ़ी बढ़ाये, स्नान न करने के कारण शरीर पर मन-भर मैल जमाये यह कौन है, जो महाभारत के पाठ की फरमाइश की ढिठाई करता है। इस तरह सब लोग घूरकर उसकी ओर देखने लगे।

शामण्णा ने बड़ी खुशी से दस पद्य पढ़कर सुनाये। नवागन्तुक बीच-बीच में साधुवाद देता जाता था। शामण्णा के पाठ समाप्त होते

ही वह बोला, "वाह भाई वाह ! कमाल कर दिया। मैसूर में सिर्फ एक उस बसप्पा को ही मैंने इस तरह पढ़ते देखा है।"

शामण्णा ने पूछा, "कौन बसप्पा ?"

"वो आसी बसप्पा है ना ? जिन्ने नाटक-ऊटक लिक्खें। तुमनै उस कवि बसप्पा शास्त्री का नाँव कबी ना सुना क्या ?"

शामण्णा ने आँखें बन्द करके हाथ जोड़े और बोले—"कहाँ वे महानुभाव और कहाँ मैं। भैया, मैं तो उनका नाम लेकर पढ़ा हूँ। महाभारत का रहस्य बसप्पा शास्त्री ने ही देखा है।"

गीत और श्लोक आदि हो गये। कन्नड, तैलुगु और तमिल भाषाओं के गीतों का सौन्दर्य विराजित हुआ। अब लक्ष्मण की बारी आई। उसने कांभोजी राग में पुरन्दरदास का "ई परिय सोबगाव" यह कीर्तन आरम्भ किया। उसने ग्रामोफोन के रिकार्ड में सुनकर यह कीर्तन सीखा था। उसके दिखलाने का यही उत्तम अवसर है यह सोचकर उसने गाना प्रारम्भ किया। लक्ष्मण ध्रुपद गाकर ही चुका था कि नवागन्तुक बोला—"जरा ठहरना बेटा, वह तम्बूरा किधै है ? जरा इदर लाय्यै।"

और फिर तम्बूरा लेकर स्वर ठीक करके बोला, "हाँ, अब गा भैया !"

लक्ष्मण का गाना समाप्त होने पर नवागन्तुक का हाथ भी रुक गया और वह तम्बूरे का सहारा लेकर अश्रुपूर्ण नयन स्थिर बैठा रहा। गाना समाप्त होते ही सबने चकित होकर नवागन्तुक को देखा। आँसू पोंछकर नवागन्तुक ने फिर तम्बूरे की श्रुति ठीक करके स्वयं गाना प्रारम्भ किया। आलापन का प्रथम आवर्त समाप्त होते-होते सबको नवागन्तुक की विद्या का परिचय मिल गया। बाजा बजाने वाले अपना साज नीचे रखकर मूर्तिवत् निश्चल बैठे सुनते रहे। उसने पूर्व कल्याणी राग में त्यागराज का 'परामुख मेलरा' यह कीर्तन गाया।

फिर खरहरप्रिय राग में 'रामा नीयेडा' गाना गाया। फिर रागमालिका में पुरन्दरदास का 'हेगे मेच्चिसलि, हेगे अर्चिसलि' (हे प्रभु मैं तुझे कैसे रिझाऊँ और कैसे पूजूँ) यह गाना गाया। सबके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। लक्ष्मण ने नवागन्तुक के दोनों चरण छूकर नमस्कार किया। नवागन्तुक प्रेम से लक्ष्मण को छाती से लगाकर बोला—"बेटा, अच्छी तरौ सरसुति मैया की सेवा करता रौ। तेरी जीब पै सरसुती मैया नै बीजाक्षर लिख रक्खा है। मैंन्ने गाना सीखनैं कू अपनी सारी जिन्दगी लगा दी। फिर बी मुजै उसका ककहरा तक नई आया। भय्या, तू सीखनै कू पैदा नई हुआ, तू तो दूसरों कू सिखानै कू पैदा हुआ है। मुज जैसे बन्दरों कू आदमी बनानै कू तैंन्नै जन्म लिया। जब तू बड़ा हो जायगा तो मुलुबागिलु चन्नप्पा की कही हुई यह बात याद रखियै।"

यह कहकर नवागन्तुक, जिसने अपना नाम अब मुलुबागिलु चन्नप्पा बतलाया था, फौरन वहाँ से चला गया। किसी को पता नहीं चला कि वह किधर गायब हो गया। प्रसाद-वितरण तक लक्ष्मण वहाँ नहीं ठहरा। घर जाकर किसी से कुछ बोले बिना बिस्तर पर जाकर लेट गया।

उसे नींद आ गई। उसके पेट में कुछ खलबलाहट थी। चेन्नप्पा का रूप-आवाज-संगीत-नाम उसके कानों में, नसों में, चित्त में झंकार रहे थे। "माता ने जीभ पर बीजाक्षर लिख रक्खा है। तू सीखने कू नहीं दूसरों को सिखाने कू पैदा हुआ है" प्रत्येक बात बार-बार उसके मन में गूँजती थी। चेन्नप्पा की पूर्वकल्याणी ने उसको पागल बना दिया था। वह अपने मन से कहता था, "क्या मैं उनकी तरह पूर्वकल्याणी गा सकता हूँ ?" वह सोचता था कि उन्होंने तीन राग गाये, उनमें से पूर्वी ने ही मेरे मन पर क्यों इतना प्रभाव किया। इस बात का उत्तर देने वाला वहाँ कोई नहीं था। कोई रास्ता दिखलाने

वाला नहीं था। शामण्णा ने शास्त्रोक्त रीति से विधिवत् संगीत नहीं सीखा। उन्होंने शौकिया सुन-सुनाकर ही संगीत-ज्ञान प्राप्त किया है।

पूर्वी कल्याणी लगातार लक्ष्मण के कानों में गूँजती रहने लगी। उसकी एक-एक गति, गमक वह गुनगुनाता रहता था। उसने संगीताध्यापक से वही राग और वही कीर्तन एक-दो बार गवाकर सुना। फिर उनके पास के ग्रामोफोन-रिकार्डों के बंडल से निकालकर पूर्वी कल्याणी में गाये हुए सब रिकार्डों को बार-बार बजाकर सुनना शुरू किया। किन्तु इससे उसकी अशान्ति और अतृप्ति बढ़ती ही गई। सब चीजें 'और लाओ और लाओ' इस प्रकार उसकी तृष्णा को बढ़ाती ही जाती थीं। उसको ग्रामोफोन के रिकार्ड में तथा चेन्नप्पा से सुने हुए राग दोनों में इतना अन्तर मालूम होता था कि सन्देह होता था कि क्या यही वह राग है। वह सोचता था, "क्या मैं एक बार और चेन्नप्पा को देख सकता हूँ.........।' दिन बीतते गये, महीने बीतते गये। जिसने बिजली की चमक की तरह एक क्षण के लिए आकर लक्ष्मण के मन को हिला दिया था वह नवागन्तुक फिर कभी दिखाई नहीं दिया।

छः

जसी कि आशा थी, रामचन्द्र लोअर सैकंडरी परीक्षा में पास हो गया। सिर्फ पास ही नहीं हुआ, प्रान्त में प्रथम आया। उसकी पढ़ाई अब आगे होसहल्ली गाँव में नहीं हो सकती थी। अब उसे तुमकूर वा बंगलौर भेजना चाहिए। अब यह प्रश्न उठा कि अनजान लड़के को अकेले बंगलौर कैसे भेजें। उन्होंने सोचा कि उसीके लिए बंगलौर में एक मकान लेकर वहाँ घर बनाकर रहें। सावित्रम्मा ने अपने बेटे को छोड़कर अकेले गाँव में रहना स्वीकार नहीं किया और सावित्रम्मा को छोड़कर रायसाहब अकेले कैसे रह सकते थे? शान्ता की शादी होनी है? उसको संगीत और साहित्य की शिक्षा देनी चाहिये। अभी गोपाल की तो कोई चिन्ता नहीं है।

इन सब चिन्ताओं से भी बढ़कर एक और चिन्ता उत्पन्न हो गई। गौरम्मा ने चारपाई पकड़ ली। स्नानघर से लौटते हुए पैर फिसलकर गिर पड़ने के बहाने से उनको रोज ज्वर आने लगा। डाक्टर ने आते ही मलेरिया बतलाकर दो इंजेक्शन दिये। बुढ़िया में जो थोड़ी-बहुत शक्ति बची थी वह और भी कम हो गई। गाँव के पुट्टु पंडित नाड़ी देखकर, मुँह बनाकर सिर हिलाकर बोले, "उम्र हो गई। मुझे तो सन्देह है। फिर भी प्रयत्न करता हूँ।" ये धीरज बँधाने वाले शब्द कहकर शीशी से गोली निकालकर घिसकर पिलाने लगे। उनके प्राण आठ-दस दिन तक किसी तरह घिसटते गये। एक दिन मंगलवार था। उनकी आवाज धीमी पड़ गई और उन्होंने सब घर वालों को देखना चाहा और बेटे, बहुओं, पोती-पोतों सबको आँख भरकर देखकर 'गंगा' कहकर पुकारा। मीनाक्षम्मा ने अभी स्नान करके धुले कपड़े

पहने थे। उन्होंने गंगा-जल की शीशी खोलकर एक चमचा गंगा-जल उनके मुँह में डाला। आधा मुँह से बाहर लौट आया। गरदन एक ओर झुक गई। रायसाहब ने चादर से माँ का मुँह ढक दिया।

आगे का काम अब कुछ देर के लिए भी रोका नहीं जा सकता था। सुब्बाभट्ट पंचांग निकालकर उसे देखकर धीरे से रायसाहब से बोले—

"रायसाहब, एक बात है।"

"क्या है उपाध्याय जी!"

"बड़ी माँ जी का स्वर्गवास अच्छे नक्षत्र में नहीं हुआ। वह धनिष्ठा पंचक में हुआ है। उसकी शान्ति होनी चाहिए और पाँच मास के लिए यह घर छोड़ देना चाहिए।"

"अच्छा, ऐसा ही करेंगे। और क्या करें?"

यह कहकर रायसाहब सिर पर हाथ धरकर बैठ गये।

कुछ समय के लिए नागण्णा शेट्टी की धर्मशाला में रहने का प्रबंध करके फिर एक मकान ढूँढ़कर स्थायी घर बनाने का प्रबन्ध करने के लिए शामण्णा को रायसाहब ने बंगलौर भेज दिया।

सब उत्तर-क्रिया हो गई। तेरहवीं भी हो गई। अगले दिन रायसाहब सब रैयत को बुलाकर खेती-बारी के प्रबन्ध के विषय में बातचीत करके एक अच्छा दिन देखकर बंगलौर को चल दिये। उनके गाँव छोड़ने से सारा गाँव दुखी हुआ। हासहल्ली मानो विधवा हो गई। रायसाहब के आश्रितों को अपार शोक हुआ। मीनाक्षम्मा ने सबको बहुत समझाया, पर कुछ फल न हुआ। गाँव की स्त्रियों ने यह समझा कि आज उनकी लक्ष्मी गाँव छोड़कर जा रही है। मीनाक्षम्मा सबके माथे पर विदाई का सूचक कुंकुम लगाते-लगाते थक गईं।

रायसाहब की जमीन जोतने वालों में ३०-४० घर हरिजनों के थे। रायसाहब उन सबका पालन एक-सी दृष्टि से करते आ रहे थे।

वे सब भी एक तरफ आकर खड़े हो गये । मीनाक्षम्मा उनसे विदा लेने के लिए उधर गईं । उन्होंने—आबाल वृद्ध सबने—साष्टांग नमस्कार करके कहा—

"जी भरकर हमको आशीर्वाद दो अम्मा !"

बूढ़ा मरिगुड्डा कुछ आगे आकर हाथ जोड़कर काँपते हुए बोला—

"मीनम्मा, जल्दी हमारे गाँव कू लौट आइयो । अपने इन गरीब बच्चों कू बे माँ-बाप के करकै मत छोड़ दियो ।"

मीनक्षम्मा के मुँह से आवाज ही नहीं निकली । आँखों से अश्रु-धारा ने बहकर दृष्टिरोध कर दिया । करुणार्द्र दृष्टि से सबको देखकर निरुपाय बस में जाकर बैठ गईं । रायसाहब सबको हाथ जोड़कर चल पड़े । जब तक बस आँखों से ओझल नहीं हुई, तब तक कोई वहाँ से नहीं हिला ।

बस ज्यों-ज्यों बंगलौर के समीप पहुँचती जाती थी, त्यों-त्यों राय-साहब का मन भारी होता जाता था । वे अपने चारों ओर के दृश्य को आँख भरकर देखते आ रहे थे । उस भूमि के प्रत्येक भाग को रायसाहब पहचानते थे और प्यार करते थे । उनके जीवन का अधिक भाग माता वसुन्धरा की सेवा में बीता था । उन्होंने अपने बचपन में जो नारियल के पेड़ लगाये थे, अब वे बड़े होकर आकाश से बातें करते और फल देते थे । होसहल्ली से क्या दूर होते जा रहे थे, मानो असली जीवन से दूर होते जा रहे थे । वे सोच रहे थे कि बंगलौर का नगर का कृत्रिम जीवन कहाँ, और मेरा होसहल्ली का विश्राम-धाम कहाँ ।

अपनी अत्यन्त प्रिय एक वस्तु को रायसाहब होसहल्ली में छोड़कर जा रहे थे । वह थी उनकी माता । किन्तु अब उपाय ही क्या था । रायसाहब को दृढ़ विश्वास था कि अगर माता जीवित होती तो जरूर कहती, "नगर जाकर, बड़ा नाम कमाकर वापस आओ भैया !"

लक्ष्मण का मन भी उतना ही भारी था । ज्यों ही वह हनुमान

जी के मन्दिर के सामने पहुँचा, वह धाड़ मारकर रोने लगा। वहाँ उसको जो-जो अनुभव हुए थे, वे आँखों के सामने नाचने लगे। किन्तु इस दुःख के साथ ही एक सान्त्वना भी थी। बंगलौर बड़ा नगर है। वहाँ बड़े-बड़े विद्वान् रहते हैं। वहाँ मुझे संगीत सीखने का अवसर मिलेगा। इस आशा के सहारे वह अपनी प्रिय होसहल्ली को भूलने को तैयार हो गया।

होसहल्ली को छोड़ने से जिसको जरा भी दुःख नहीं हुआ, वह अकेला रामू था। वह गाँव के जीवन से ऊब गया था। उसके मन में यह भावना बद्धमूल हो गई थी कि उसके स्कूल के लड़के तथा अन्य साथी सब ही हरेक तरह से उससे बहुत नीचे हैं। 'मैं रायसाहब का लड़का हूँ। इन गाँव के छोकरों के साथ कैसे खुलकर रह सकता हूँ? बंगलौर में बड़े आदमियों के लड़कों के साथ मित्रता करूँगा।' यह सोचकर वह कुछ गर्व के साथ रहने लगा। लोअर सैकंडरी परीक्षा का परिणाम निकलने की देर थी कि दूसरों का उससे बातचीत करना ही कठिन हो गया। जी में आता, उत्तर देता, नहीं तो चुप्पी साध लेता। बाहर वालों को ही नहीं, लक्ष्मण को भी अनेक बार यही अनुभव होता।

सात

शामण्णा ने रायसाहब की प्रतिष्ठा और घराने के अनुकूल ही एक मकान बसवनगुडी मुहल्ले में लिया था। मकान कोलतार वाली बड़ी सड़क पर था, आस-पास गोल बड़े बिजली के लैम्प थे। उस मुहल्ले में बड़े वेतन वाले सरकारी अफसर और धनी लोग रहते थे। लाल बाग नामक बंगलौर का प्रसिद्ध पार्क पास ही था।

मकान भी काफी बड़ा था। नीचे की मंजिल में बीच में बड़ा हाल, चार-पाँच कमरे, रसोई, स्नान घर, पूजा का कमरा, और ऊपर की मंजिल में एक हाल तथा दो कमरे थे।

घर को देखते ही रामू ने ऊपर के एक कमरे को अपने लिये चुन लिया। लक्ष्मण नीचे के कमरे से ही सन्तुष्ट हो गया।

मकान का अहाता भी कुछ बड़ा था। मकान-मालिक फूल-पौधों के प्रेमी थे। उन्होंने अहाते भर में बेला, चमेली आदि के पौधे तथा बेलें लगा रखी थीं। सबेरे डलिया भर तरह-तरह के फूल रायसाहब की पूजा के लिए तैयार हो जाते थे। बगीचे की देख-भाल का भार रायसाहब ने अपने ऊपर ले लिया था। वे ही अपने-आप ही खोद-कर, क्यारियाँ बनाकर पानी सींचते थे। पिता को ही अकेले काम करता देखकर लक्ष्मण भी पानी भर-भरकर डालने लगता था। अंत में शामण्णा भी फुरसत मिलने पर कुछ-न-कुछ करने लगते। वे पौधों को धोते, लैम्प हाथ में लेकर गुलाब के पौधों पर से कीड़े चुन-चुनकर हटाते, नये-नये पौधों के बीज लाकर बोते, और इसी तरह से बगीचे की श्री-वृद्धि के उपाय सोच-सोचकर कुछ-न-कुछ करते रहते। पहले

लक्ष्मण ने पिता के लिए बगीचे का काम करना प्रारम्भ किया था। अब करते-करते बगीचे की सेवा में उसको रस आने लगा और पिता को पूरी छुट्टी देकर बगीचे की पूरी जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली। होसहल्ली की वनश्री इस छोटे बगीचे में तो नहीं आ सकती थी, पर उसकी याद दिलाने वाले इस बगीचे में ही लक्ष्मण अपने मन को बहलाता था।

मेरे लगाये हुए पौधे बड़े हो गये, उनमें कलियाँ आ गईं, फूल लग गये, खिलकर उनकी सुगन्ध चारों ओर फैल गई, यह देखकर लक्ष्मण का मन आनन्द से खिल उठता था। फूलों पर दिखाई देने वाले तरह-तरह के रंग, हवा से उनका इधर-उधर झुकना, परस्पर एक-दूसरे को देखना, और बात-चीत करना, यह सब सौन्दर्य लक्ष्मण के मन में नाना भावनायें उत्पन्न करता।

कोई पौधे से फूल तोड़ता तो लक्ष्मण को इतना कष्ट होता मानो किसी ने उसको चिकोटी काट ली। एक बार शान्ता सब गुलाब के फूलों को तोड़कर आँचल में भरकर अपनी अभिरुचि के लिए बड़े भाई से प्रशंसा पाने के वास्ते उसके सामने आकर खड़ी हो गई और बोली—

"देखा, लच्ची भैया!"

लक्ष्मण की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उस दिन से शान्ता बड़े भैया से पूछे बिना एक फूल भी नहीं छूती।

रामचन्द्र बाहर से घर आते समय जल्दी में कितनी ही बार अहाते का दरवाजा बन्द करना भूल जाता। लक्ष्मण की महीनों की मेहनत एक क्षण में ही, बाहर से आये गाय, बैल, बकरियों के मुँह का ग्रास बन जाती। लक्ष्मण के "रामू, आते-जाते वक्त दरवाजा बंद करते आना!" यह कहने पर रामू ने उत्तर दिया: "मैं तेरा नौकर नहीं हूँ। जरूरत हो तो तू ही बन्द कर ले।" लक्ष्मण ने उसके उत्तर

से बुरा न मानकर दरवाजे पर दृष्टि रखने का अभ्यास कर लिया।

रामचन्द्र, शान्ता और गोपाली के विषय में रायसाहब को बिल्कुल चिन्ता नहीं थी, किन्तु लक्ष्मण के विषय में चिन्ता दिन-पर-दिन बढ़ती जाती थी। रायसाहब को यह बात मालूम हो गई कि वह किसी कारण भीतर-ही-भीतर दुखी रहता है। मैं सीधे पूछूँ इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि उसकी माता पूछे, यह सोचकर उन्होंने मीनक्षम्मा से पुछवाया। लक्ष्मण ने साफ कह दिया कि "स्कूल जाने की मेरी इच्छा नहीं है, मैं संगीत सीखना चाहता हूँ।" रायसाहब की चिन्ता और भी बढ़ गई। वे सोचने लगे कि "हमारे वंश में कोई भी गवैया नहीं हुआ। इसकी ऐसी इच्छा क्यों है? अब क्या करना चाहिये?" उन्हें कोई भी मार्ग दिखाई नहीं दिया। तब उन्होंने शामण्णा से यह बात उठाई—

'शामा, तुम क्या कहते हो?"

"लक्ष्मण बुद्धिमान है। पर वह कहता है कि मुझे स्कूल में पढ़ना पसन्द नहीं है। हम उसको ज़बरदस्ती भेजें तो वह हमारे लिहाज से जायगा पर उसको पाठ कुछ भी नहीं आयेगा।"

"हाँ। मालूम नहीं कि यह पागलपन उस पर कहाँ से सवार हो गया। यह उस मुलबागल चन्नप्पा की करतूत मालूम होती है। हमारे घराने में आज तक किसी ने मंजीरा, तम्बूरा पकड़ा नहीं। वह दासय्या बनना चाहे तो कोई क्या कर सकता है? उसके भाग्य में ही यह लिखा है। तुम उससे एक बार कहकर देखो!"

"मेरी तो उससे रात-दिन यही चर्चा रहती है। वह अपने निश्चय से हिलने वाला नहीं है। वह कहता है कि मैं पेट भरने के लिए संगीत नहीं सीखता। जिधर उसकी प्रवृत्ति है वैसे ही करना उचित है। आगे आप मालिक हैं।"

रायसाहब ने और कोई उपाय न होने से स्वीकार कर लिया कि

उन्हें यह बिलकुल भी पसन्द नहीं था। अगले दिन से उन्होंने बेटे को संगीत के विद्वान् अनन्ताचार्य की 'कर्नाटक-गायनशाला' में भेजना आरम्भ कर दिया। अनन्ताचार्य का घराना संगीत में विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था। उनके पिता वेंकटेशाचार्य दक्षिणादि संगीत के प्रसिद्ध विद्वान् पूची श्रीनिवासय्यंगार के सहपाठी थे। अनन्ताचार्य शारीरिक अयोग्यता के कारण संगीत-सभाओं में गाने नहीं जाते थे। उनका गला गाने के लिए उतना अनुकूल नहीं था। किन्तु संगीत-शास्त्र के ज्ञान में और शिष्यों को सिखलाने में वे अद्वितीय थे। उनके नीचे वर्ष-दो वर्ष संगीत सीखकर कितने ही लोगों ने प्रसिद्ध गायक बनकर ग्रामोफोन के रिकार्डों द्वारा खूब नाम कमाया था।

आचार्य ने शिष्य की परीक्षा ली। उसके गले में विद्यमान अपार नाद-सम्पत्ति को देखकर वे आश्चर्य-चकित हुए।

उन्होंने पूछा, "बेटा, तू कितने वर्ष संगीत सीखेगा ?"

'गुरु महाराज, आप दया करके जितने दिन सिखायेंगे, उतने दिन। मेरी इच्छा अच्छी तरह सीखने की है। आपका आशीर्वाद मिलना चाहिये।"

"तूने जो खरहर प्रिय राग गाकर सुनाया, उसका संचार तूने कहाँ सीखा ?"

लक्ष्मण ने मुकुबागिलु चेन्नप्पा का वृत्तान्त कह सुनाया। आचार्य ने चेन्नप्पा का नाम सुनते ही भक्ति से आँखे मूँदकर नमस्कार किया।

' गुरु जी, वे चेन्नप्पा कौन हैं ?"

"उनके विषय में क्या पूछता है ? वे एक अवतारी पुरुष हैं। साक्षात् नारद मुनि का अवतार हैं। उन्होंने संगीत को ही योग बनाकर अभ्यास किया है। वे बतलाते नहीं कि किससे गाना सीखा है। पूछने पर 'साध्वी स्त्री अपने पति का नाम नहीं लेती' यह कहकर

हँसकर टाल देते हैं। वे बड़े समुद्र के समान हैं। कोई अच्छा गाना गाये, कोई अच्छा बाजा बजाये, वहीं पहुँच जाते हैं। लहर आ जाय तो गाते हैं। त उनकाव गाना सुनना चाहिये। तूने भी तो सुना है। वे महानुभाव कभी एक जगह पर नहीं रहते। उनका पक्षी का-सा स्वभाव है। मेरे गुरु श्रीपूचि श्रीनिवासय्यंगार ने एक बार चेन्नप्पा का गाना सुनकर कहा, 'गान-विद्या जिसे कहते हैं, वह यही है। हम सबका तो कोरा आडम्बर है।' बेटा, तुम पर उन्हींका अनुग्रह हुआ है। वे ही तुम्हारे गुरु हैं। मैं तो केवल नाम-मात्र को तुम्हारा गुरु होऊँगा। तुम जैसे जन्मजात गायक को सिखलाना मेरे लिए गर्व की बात है।"

"गुरु जी, आप इस तरह मुझे काँटों में न घसीटिये।"

"लक्ष्मण, मैं सच कहता हूँ। यह उत्प्रेक्षा नहीं है। तुम्हारे पास कला का भंडार है। मैं उसके लिए एक क्रम दिखलाकर शास्त्र का परिचय करा दूँगा। सिर्फ इतनी बात है। सीखने वाले सबको शास्त्र आता है। वह बुद्धिगम्य है। किन्तु कला नहीं आती। वह बुद्धि से नहीं, चित्त से जानी जाती है।"

"आपकी बात का खंडन करने की शक्ति मुझमें नहीं है। ऐसे ही सही।"

यों कहकर लक्ष्मण ने गुरु की बात मान ली।

आठ

अब बंगलौर में राय साहब का मन लग गया। उनको दो मित्र मिल गये। उनमें से एक भीमराव बहुत दिनों तक जयपुर में जंगलात के विभाग में नौकरी करके रिटायर होकर अब अपने शहर में ही बस गये थे। यद्यपि वे जन्म से मैसूर वाले ही थे, पर उनका नाम जयपुर वाले भीमराव पड़ गया था। देश-विदेश में बहुत घूमने के कारण भीमराव की दृष्टि बहुत विशाल थी। साहित्य और संगीत में भी उनकी अभिरुचि थी। जीवन-संध्या निकट आ जाने के कारण प्रभु पर भक्ति भी उनकी बड़ी दृढ़ि थी। प्रातः ६ बजे पूजा पर बैठते और किसी के आने पर भी ८-८॥ बजे से पहले न उठते। दोपहर को बिना नागा 'मध्वविजय' या 'मणिमंजरी' का पाठ करते। इसके अलावा एक पंडित जी रायसाहब को सुधा' नामक ग्रंथ का पाठ कराने आया करते थे।

भीमराव कुटुम्ब का बड़ा था। इसलिए उनमें लोभ, कृपणता आदि छोटे गुण नहीं थे। उनको बहुत बातें करना पसन्द था। रायसाहब और भीमराव का स्वभाव दूध और चीनी के समान घुल-मिल गया था। इनके दूसरे मित्र वकील सुन्दरराव थे। किसी जमाने में बंगलौर के प्रसिद्ध वकीलों के नाम पूछने पर कोई भी बिना रुकावट के डी० वेंकटरामय्या, एल० श्रीनिवासय्यंगार और सुन्दरराव इन तीन के नाम बतलाता था। अब उम्र ज्यादह हो जाने पर सुन्दरराव अपना आफिस अपने लड़के को सौंपकर विश्रान्ति-सुख अनुभव कर रहे थे।

सुन्दरराव की बातचीत भीमराव की तरह सरल नहीं होती थी।

वह कुछ टेढ़ी होती थी। चालीस वर्ष तक लगातार वकालत करने का परिणाम उनके स्वभाव पर खूब दिखाई देता था। वे कोई भी बात बिना बहस किये, बिना विरोध किये स्वीकार नहीं करते थे। हँसी-मजाक का पुट दिये बिना वे कोई बात कहते ही नहीं थे। किन्तु उनकी दृष्टि उदार होती थी। कमीनी बातें या चाल देखकर वे काले नाग की तरह फुफकारने लगते थे।

ये तीनों मित्र प्रायः एक-दूसरे से अलग नहीं रहते थे। लालबाग में देखो, शंकरय्या हाल में होने वाली संगीत-सभा में देखो, कर्नाटक साहित्य-परिषद् के व्याख्यान-मन्दिर में देखो, तीनों रायसाहब साथ ही रहते थे। संगीत होते समय और व्याख्यान होते समय भी भीमराव और सुन्दरराव की बहस शुरू हो जाती थी। तब श्रोतृवृन्द 'श् श् श्' करके मुँह पर हाथ रखकर उनको चुप कराता।

सुन्दरराव सिर्फ बातचीत में ही टेढ़े थे, किन्तु उनकी अभिरुचि बाकी लोगों से भी अधिक आगे बढ़ी हुई थी। वे हमेशा आधी अंगुल चौड़ी ज़रीकिनारी की धोती पहनते थे। उसको आगे-पीछे अच्छी तरह दबा-दबा कर बड़ी नजाकत के साथ पहनते थे। अमावस्या या शनिवार की परवाह किये बिना तीसरे दिन बिना नागा दाढ़ी बनवाते थे।[1] बाहर जाते समय बन्द गले का सर्ज का कोट, पैरों में काले चमकीले पम्प शू और हाथ में हाथी-दाँत की छड़ी होनी ही चाहिए।

खान-पान में भी सुन्दरराव की नजाकत प्रसिद्ध थी। उपाहार अच्छे घी का बने इतना ही पर्याप्त नहीं, उसको लाने और परोसने का ढंग भी वैसा ही सुन्दर होना चाहिये। वे पान हमेशा एक विशेष दुकान से खरीदते थे। नंजुण्डप्पा उनको ३५ साल से पान देता आ रहा था। वह मैसूर के कोमल पानों की पूरी ढोली लेकर उसमें से

१. दक्षिण भारत में पुराने खयाल के लोग अमावस्या और शनिवार को हजामत बनवाना बुरा समझते हैं।

एक-एक करके खोजकर सोने के रंग के दो अंगुल चौड़े कोमल पान चुन-चुनकर एक गड्डी भर सुन्दरराव को देता था। सुपारी और चूने में भी वही नजाकत और वही सौन्दर्य था। रंग न दी हुई सुपारी और केसर न डाला हुआ चूना उनके सामने भी नहीं आना चाहिये। भीमराव जितने धर्म-प्रेमी थे, सुन्दरराव उतने ही मत-धर्म की परवाह न करने वाले थे। इसी विषय में उन दोनों में बड़ा विवाद हो जाता था।

एक दिन सायंकाल तीनों दोस्त सुन्दरराव के घर में बैठे थे। उपाहार भी हो गया। हल्का ही होना चाहिये, इसलिए थोड़ा उघिट्टु (नमकीन हलवा), दो-दो केले, तुरई का पकौड़ा, रवे के लड्डू और काफी बस इतना ही था। अन्त में रायसाहब ने अपनी फ़रमाइश की चीज दाल मोठ सामने लाकर रख दी। सबने "नहीं चाहिये, नहीं चाहिये" कहते हुए भी खाली तश्तरी ही घर के भीतर लौटाकर भेजी। फिर पान खाने के बाद बात-चीत का दौर चला।

भीमराव ने मजाक करते हुए कहा, "क्या है सुन्दरू, ज्यों-ज्यों उम्र ज्यादा होती जाती है त्यों-त्यों तुम्हारी जीभ का चटोरापन भी बढ़ता जाता है।"

"क्या चटोरापन है? बतलाओ ना! रावसाहब हमारे घर में आते ही बहुत कम हैं। उनके आने पर थोड़े पकौड़े और उघिट्टु यह हल्का-सा उपाहार बनवा लिया।"

रावसाहब बोले, "वह हल्का उपाहार है तो अच्छी तरह से बनवाने पर कैसा होता?"

भीमराव बोले, "अब तुमको चुप ही रहना चाहिए, बीच में नहीं बोलना चाहिये। सुन्दरू उसके लिए काफी है। कल को पुत्र-जन्म-दिन है यही बहाना बनाकर हमको मार ही डालेगा।";

"सचमुच ही ऐसा है जी! कल सचमुच ही बेटे का जन्म-दिन है। मेरे बेटे का नहीं, बेटे के बेटे का। रावसाहब और तुम दोनों कल

भोजन के लिए इधर ही आ जाना।"

मैंने तो हँसी में कहा था, वह सच ही निकल गया। अच्छा ऐसा ही सही। तुम्हारी मर्जी। और राव साहब तुम ?"

"क्या मैं चूक सकता हूँ ?"

तीनों मित्रों में 'हम एक ही घर के हैं' यह भावना थी। सुख हो या दुःख हो; दोनों में एक ही थे। किसी को कोई कष्ट हो, घर में कोई बात हो, बाकी दोनों से कहकर सलाह किये बिना मन को सन्तोष ही नहीं होता था। उनमें किसी के घर में कोई समारोह हो, कोई खाने-पीने की चीज बने, तो बाकी दोनों को दिये बिना तृप्ति ही नहीं होती थी। सुन्दरराव को कुछ खाने की इच्छा हो तो वे निःसंकोच कह देते, "भीम, कल थोड़े से अरहर की कनकी के लड्डू और ताक की लपसी बनवा लेना। मैं और रावसाहब दोनों कल वहीं जमेंगे।" रायसाहब को कभी कुछ खाने की इच्छा हो तो भीमराव के घर से वह बनकर आ जाती।

गप्पें लड़ाने बैठ गये तो बस बैठ ही गये। सब घर वाले भोजन समाप्त करके, काम-काज समेटकर सो जाते और एक नींद ले लेते। यह मित्र-मण्डली दुनिया-भर के विषयों पर गप्प लड़ाती रहती और फिर भी नये-नये विषय निकलते रहते। उस दिन बातों का चक्र चलते-चलते बच्चों की शिक्षा के विषय में बात चल निकली। सुन्दरराव ने पूछा—

"तुम्हारा लक्ष्मण अन्ततोगत्वा अब क्या कर रहा है ?"

"संगीत सीखने जा रहा है। उसने सौ कीर्तन सीख लिये हैं। रात-दिन अभ्यास करता रहता है। अपनी बहन को भी सिखलाता है। उसी की मुझको बड़ी चिन्ता है।"

"संगीत में क्या धरा है ? उससे क्या मिलता है ? बताइए ! मैसूर में संगीताचार्य भरे पड़े हैं। समाज की संगीत-गोष्ठियों को हम

ही देखते रहते हैं ना। हमारे लोग बाहर का कोई अय्यर[1] आये तो उसको खूब पैसा देते हैं। कहावत है, 'गाँव का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध।'

भीमराव बोले, "हमारे लोगों को भी ऐसा ही करना चाहिए। बाहर जाकर, तिरुच्चिरापल्ली, तंजौर आदि शहरों में संगीत-गोष्ठी करके वहाँ लूट-मार करके आना चाहिये।"

"भीमराव, यह कैसे हो सकता है? हमारे लोगों में अभिमान नहीं। बाहर का कोई आये तो उनको बहुत अच्छा लगता है। तिरुच्चि-रापल्ली और तंजौर के लोग दूसरे ढंग के हैं। अपनी तरफ का आदमी आए तो वे उसे जान से ज्यादा प्यार करते हैं, और बाहर वालों को एक पंचपात्र और गंगाजल तक नहीं देते।"

"हाँ, सच है, सच है।"

"एक दिन तुम्हारे लक्ष्मण का गाना सुनना चाहिये, रावसाहब!" यह कहकर सुन्दरराव ने अपनी बहुत दिनों की इच्छा प्रकट की।

"देखो यही तो मुश्किल है। उसका गाना मैंने भी अच्छी तरह नहीं सुना। वह कहता है कि मैं अच्छी तरह सीखकर पहले गुरु को अर्पण किये बिना किसी के सामने भी नहीं गाऊँगा। यह बात वह एक तरह बड़ी नम्रता से कहता है। हमको भी एक तरह की दया उपजती है। लड़का घमंड से यह बात नहीं कहता। उसके अन्तःकरण से यह बात निकलती है।"

सुन्दरराव बोले, "अनन्ताचार्य मुझे मिले थे। प्रसंगवशात् लक्ष्मण की बात चल निकली। मैंने पूछा, 'शिष्य कैसा है?' वे बोले 'शिष्य कैसा महाराज? मेरा गुरु है-गुरु। वह एक युग-पुरुष है। बाकी लोगों को उसका नाम लेकर ही संगीत में हाथ डालना चाहिए।' उस दिन से मेरा कौतूहल बढ़ रहा है।"

---

१. अय्यर=तमिलदेशीय एक ब्राह्मण उपजाति।

भीमराव ने पूछा, "इस बार रामू मैट्रिक परीक्षा में बैठेगा ना ?"

"हाँ।"

सुन्दरराव ने एक खास लहजे में कहा, "मैं एक बात कहना भूल गया था।"

उनकी आवाज में संकोच देखकर रावसाहब बोले, "कहो, संकोच किस बात का है ?"

"आज सबेरे हमारे गुमाश्ते नंजुण्डय्या जी अपनी छोटी बहन के लड़के को लेकर आये थे। बड़े गरीब हैं। लड़का मैट्रिक में पढ़ रहा है। वे प्रार्थना करने लगे कि 'कोई आप जैसे लड़के को घर में रखकर भोजन-वस्त्र देकर विद्या-दान करायें।' 'वे यों भी तुम्हारी ही जाति के हैं, तुझसे पूछ कर देखूँगा।' यह कहकर मैंने उनको लौटा दिया।"

भीमराव-बोले, "तुम्हारा लड़का भी मैट्रिक के लिए पढ़ रहा है। पढ़ने के लिए एक साथी हो जायगा।"

"क्या उम्र है ?"

"१६-१७ बरस का होगा।"

"भेज देना। नगर में रहने में हरेक को कठिनाई होती है। जिस घर में चार आदमी हैं, उसमें एक और आदमी के लिए भोजन नहीं मिलेगा क्या ?"

यह कहकर रायसाहब ने स्वीकार कर लिया। सुन्दरराव को बहुत खुशी हुई।

वे बोले, "आप उदाराशय महानुभाव हैं। मालूम होता है कि जिनका नाम श्रीनिवास होता है वे सब ऐसे ही होते हैं। देखिये ना, कपूर श्रीनिवासराय थे ना, वे भी ऐसे ही थे। उन महानुभाव ने कितने ही गरीब लड़कों को भोजन देकर विद्या-दान कराया था।"

"देखिये ना, आजकल लड़कों को बड़ा कष्ट है। बंगलौर या मैसूर आये बिना अगली पढ़ाई नहीं हो सकती। यहाँ आने पर एक जून

भोजन मिलना कठिन है। वार[1] मिलते नहीं। भिक्षान्न वाले लड़कों का भगवान् ही मालिक है। हमारे घर में एक लड़का वारान्न के लिए आता है। एक दिन वह झोली पकड़े आया। मालूम होता है कि भीतर से भात लाने में देर हो गई। वैसे ही बेहोश होकर वह गिर गया। तब हम मुँह पर पानी छिड़ककर उसको होश में लाये। 'बेटा, तू बेहोश होकर क्यों गिर गया। ?' यों पूछने पर बोला, 'तीन दिन से एक दाना मुँह में नहीं गया महाराज, कल किसी ने बासी भात दे दिया। खाते ही मुझे उलटी हो गई।' मैंने उससे कह दिया, 'जिस दिन और कहीं भोजन न मिले, तब हमारे यहाँ आ जाया कर !' ऐसे लड़के इस बंगलौर शहर में कितने ही हैं।"

सुन्दरराव ने अपने तरकश से तर्क-बाण छोड़ा।

"हमारे मठाधिपति महन्त सब भक्तों का पैसा चर-चर कर अपनी तौंद बढ़ाते जाते हैं। वे गरीब विद्यार्थियों के लिए मुफ्त छात्रावास क्यों नहीं खोलते।"

"सुन्दरू, तुम मठों को गाली देना छोड़ दो। नगर में कितने ही पैसे वाले हैं। वे क्या करते हैं ? बेकार खर्च होने वाले धन का उपयोग वे इस काम में क्यों नहीं करते ?"

"उनको तीन-तीन दिन में नई-नई मोटर के लिए और रंडी जानकीबाई को देने के लिए ही पैसा काफी नहीं होता। इन सब कामों के लिए आये तो कहाँ से आये ?"

---

१ दक्षिण भारत में रिवाज है कि गरीब विद्यार्थी सप्ताह में सात वार (सात दिन) बारी-बारी से एक-एक घर में भोजन कर आते हैं। इस प्रकार सात घरों में वार-अन्न का प्रबंध हो जाय तो वे भोजन की चिन्ता से निवृत्त होकर पढ़ सकते हैं, खिलाने वालों पर भी बोझा नहीं पड़ता। इस प्रथा को वारान्न (वार=दिन+अन्न=भात) कहते हैं।

"हाँ जी, गरीब बच्चों को पूछने वाला कोई नहीं है।" यह कह-कर श्रीनिवासराय ने बात खत्म की। सब लोग उठकर लाल बाग की तरफ सायंकालीन सैर करने के लिए चल दिये।

नौ

वेंकटेश रावसाहब के घर में आकर दो-तीन दिन में ही सबसे हिल-मिल गया। वह सबके काम में मदद देता था। सबके सुख-दुःख में भागी होता था। रावसाहब भी लड़के के गुणों को देखकर आश्चर्य-चकित हुए। उन्होंने सुन्दरराव से वेंकटेश के गुणों की खूब प्रशंसा की।

यद्यपि वेंकटेश रामू का सहपाठी था, पर उन दोनों में उतनी घनिष्ठता नहीं बढ़ी। उसको लक्ष्मण से बहुत प्रेम था। जब कभी उसको फुरसत मिलती तो वह लक्ष्मण के साथ ही समय बिताता। पाठ का समय तो उसे रामू के साथ बिताना ही पड़ता था। उस समय और बाकी समय भी रामू किसी तरह का भी लिहाज न करके वेंकटेश से अपना काम कराता। घर में नौकर थे, फिर भी रामू वेंकटेश को ही अपना काम देता। रामू के कपड़े धोकर साफ करने के अलावा, उसका बिस्तर बिछाना, जूतों पर पालिश करना, स्कूल को पुस्तकें लेकर जाना आदि सब काम करने पड़ते थे। जरा-सी भी खराबी हो जाने पर रामू की गालियाँ खानी पड़तीं। गुस्सा आने पर रामू को होश ही नहीं रहता था। वह भूल जाता कि कौन है और कौन नहीं है। नौकर लखन को गाली देने की भी वही भाषा थी, और वेंकटेश को गाली देने की भी वही भाषा थी। क्रोध बढ़ जाने पर रूलर लेकर मार-मारकर पीठ की हड्डी तोड़ देता था। वह यह बात कभी नहीं भूलता था कि मैं राय-साहब का लड़का हूँ — घर का मालिक हूँ। इस बात को वह कभी नहीं भूलता था, और घर वालों को भी इस बात की यांद दिलाता रहता था कि वे भी नहीं भूलें।

सोने से पहले रामू एक गिलास दूध पिया करता था। सबके भोजन कर लेने बाद वेंकटेश जूठी पत्तलें उठाकर फेंकता, कटोरियाँ धोकर रख देता, भोजन की जगह गोबर का पानी छिड़ककर, रामू को दूध का गिलास ले जाकर देता और उसके बाद स्वयं सोने जाता। एक दिन रामू यों ही बिना किसी कारण शोर मचाने लगा। वह कहने लगा कि मुझे भेजे हुए दूध के गिलास में से थोड़ा-सा पीकर मुझे वेंकटेश ने लाकर दिया है और यह दोष लगाकर 'हो' करके जोर से चिल्लाने लगा। सावित्रम्मा ने उसे समझाया। रामू ने नहीं माना और माँ की बातों को भी काटने लगा। मीनाक्षम्मा यह नहीं देख सकीं और बोलीं:— "रामू ऐसा नहीं कहना चाहिये। तू बड़ा लड़का है, समझदार है। वेंकटेश क्या बच्चा है? वह ऐसी बात करने वाला नहीं।"

रामू छेड़े हुए साँप की तरह फुकारता हुआ बोला—

"बस,बस, बड़ी माँजी, तुम मुँह बन्द करो। आवारा लड़के ही तुम्हारी दृष्टि में बड़े हैं। वे जो कुछ कहें वही सच है, और मैं जो कुछ कहूँ वह झूठ है। माता में जो वात्सल्य नहीं वह तुममें कहाँ से आ सकता है?"

मीनाक्षम्मा आँखों में आँसू भरकर भीतर चली गई। सावित्रम्मा ने उनके पीछे-पीछे जाकर उनको तसल्ली दी। मीनाक्षम्मा के हृदय में बड़ी चोट लगी थी। उनके मन में बड़ा दु:ख था कि 'जब मैंने कभी भी किसी तरह का भी भेद-भाव नहीं किया, तब रामू ने किस तरह ऐसे शब्द मुँह से निकाले।"

मीनाक्षम्मा को रामू से मेरे वास्ते ऐसी बातें सुननी पड़ीं, यह सोचकर वेंकटेश के मन को बड़ी यातना हुई। उसको बड़ा दु:ख हुआ कि मेरी वकालत करने के कारण उनका ऐसा अपमान हुआ। मीनाक्षम्मा से रामू ने जो-जो बातें कहीं वे मानो बार बार उसके कानों में गूँजती थीं और उससे मन-ही-मन उसको बड़ा दु:ख होता था।

"सावित्री, तू ही बता। क्या मैंने कभी रामू के विषय में भेद-बुद्धि रखी है ?"

"वह बात छोड़ो अक्का (बड़ी बहन)। उसकी बात ही क्या ? हमेशा से उसकी बुद्धि ऐसी ही है। बड़े, छोटे, पालन-पोषण करने वाले इन सब का विवेक भी उसको नहीं" यह कहकर सावित्रम्मा ने उनको तसल्ली दी।

वेंकटेश सामने आकर खड़ा हो गया और बड़ी धीमी आवाज से बोला, "अम्मा !" मीनाक्षम्मा ने गरदन उठाकर देखा।

"मैं एक बात कहने आया हूँ। आपकी आज्ञा हो तो कहूँ।"

"कह भैया, संकोच किस बात का ?,,

"आज आपको मेरे कारण अपमानजनक बातें सुननी पड़ीं। आप जन्म देने वाली माँ से भी अधिक मेरा पालन-पोषण करती हैं। मालूम होता है, मेरे भाग्य में अब तक ही आपके यहाँ रहना है। आपकी अनु। मति लेकर कल मैं यहाँ से चला जाऊँगा।"

मीनाक्षम्मा और सावित्रम्मा दोनों घबरा गईं।

सावित्रम्मा बोली, "वेंकटेश, ऐसी बात मुँह से मत निकाल ! वह लड़का है। उसने एक बात बिना समझे-बूझे कह दी, उसके लिए तू इतना खयाल मत कर। तू अपने-आप अकेले पढ़कर यहाँ रह। कल से वह अपना काम स्वयं करे। तू चुपचाप लक्ष्मण के साथ रह।"

मीनाक्षम्मा ने भी उसका समर्थन करते हुए कहा, "ऐसा ही कर वेंकटेश ! घर-बार छोड़कर मत जा। सन्तान क्या वही है जो पेट से पैदा होती है ? वेंकटेश, तू भी हमारा ही बेटा है। यह किसी और का घर है यह भावना छोड़ दे। गोपाली को देख, लच्ची को देख, शान्ता को देख। वे सब वैसे ही तुझसे प्यार करते हैं।"

अब तो वेंकटेश निरुत्तर हो गया।

वेंकटेश के बारे में सावित्रम्मा द्वारा की हुई नई व्यवस्था सुनकर

रामू को आग लग गई । वेंकटेश की सेवा अब नहीं मिलेगी, एक ओर तो यह दुःख था, दूसरी ओर यह दुःख था कि अब अधिकार जमाने का मौका नहीं मिलेगा । जब कभी मौका लगता तो वेंकटेश के दिल को दुखाने वाली ओछी बातें कहकर खुश होने से रामू कभी न चूकता ।

एक दिन रावसाहब और बच्चे सब इकठ्टे भोजन के लिए बैठे थे । मीनाक्षम्मा भोजन परोसती तो मालूम होता था कि स्वयं मा अन्नपूर्णा खड़ी हैं । एक कौर खाने वाले को वे तीन कौर खिला देती थीं । वेंकटेश को जब वे दूसरी बार भात परोसने लगीं तो वह बोला, "नहीं चाहिये, माँ जी ! अब भूख नहीं !"

लक्ष्मण ने भी कहा, "माँ मुझे भी भूख नहीं ।"

मीनाक्षम्मा बोली—"ऐसा क्यों करते हो ? आज दोपहर को तो नाश्ता भी नहीं किया । इस तरह आधापेट खाओगे तो रात को एक बजे भूख लगेगी देखो !"

यह मौका पाकर सामने बैठा हुआ रामू बोला , "भूख लगे तो कैसे लगे, जब कि ढेर-के-ढेर कोडवले, खोपरा मिला सत्तू और बढ़िया-बढ़िया माल पास में हैं ? दोनों साहब खूब माल उड़ाकर पेट ठसा-ठस भर कर आये हैं ।"

रावसाहब चुप नहीं रहे और मजाक करने लगे, "बेचारे रामू को नहीं दिया । इसीलिए चुगली कर रहा है ।" रामू ने मुँह झुकाकर भोजन समाप्त किया ।

फर रायसाहब वेंकटेश से बोले,"तुम्हारे पास ऐसा बढ़िया-बढ़िया माल है । जरा सा मुझे तो चखाओ ।"

वेंकटेश को सूझा नहीं कि क्या जवाब दे । रावसाहब का सौजन्य कोई नया न था, पर उसकी प्रत्येक बात में सौजन्य की नई नई कला प्रकट होता था । वेंकटेश बड़े कष्ट से संकोच के साथ बोला,

"हम गरीबों के घर की तेल की चीजें हैं महाराज बड़े लोगों को देने लायक नहीं हैं।" रावसाहब भोजन समाप्त करते ही वेंकटेश के गाँव से आया हुआ तेल का माल मँगाकर चखकर बोले, "वाह क्या बढ़िया है!"

दस

इंटरमीडियेट क्लास तक पहुँचते-पहुँचते वेंकटेश का मन पढ़ाई से भर गया। रामू और वह दोनों साथ-साथ परीक्षा में बैठे। रामू पास हो गया और वेंकटेश डुबकी लगा गया। अगले वर्ष फिर उसी परीक्षा में बैठा और फिर फेल हुआ। तब उसने निश्चय किया कि एक साल और देखूँगा। पास हो गया तो आगे पढ़ूँगा, नहीं तो स्कूल को हमेशा के लिए बड़ा नमस्कार कर लूँगा। उस वर्ष रामू ने बी० ए० की परीक्षा दी। हमेशा की तरह रामू तो पास हो गया और वेंकटेश इंटरमीडियेट परीक्षा में फेल हो गया।

रामू ने खूब हँसी उड़ाई, "मुफ्त भोजन मिलता है। इसलिए शौकीनी करते फिरने वाले को विद्या कैसे आ सकती है?"

अब निश्चय हुआ कि रामू पूना जाकर एल. एल. बी. करे।

मीनाक्षम्मा के मन में एक बड़ी चिंता थी। पति से कई बार कहा, पर वे उस पर कान ही नहीं देते। शांता को सोलहवाँ वर्ष पूरा हो रहा है पर उसके विवाह के बारे में रावसाहब कुछ ध्यान नहीं दे रहे हैं। मीनाक्षम्मा कभी बात उठाए तो "तुम निश्चिंत रहो! मैं प्रबंध कर दूँगा" यह कहकर बात समाप्त कर देते। तब मीनाक्षम्मा ने शामण्णा के द्वारा रावसाहब से कहलवाया। उनका भी उत्तर नहीं मिला। तब मीनाक्षम्मा ने एक दिन जिद पकड़ ली।

"यह ऐसा कैसे कहते हो जी! शांता को सोलहवाँ वर्ष पूरा हो रहा है। अब विवाह को कैसे टालते जा सकते हैं? लोग अब तरह-तरह की बातें करने लगे हैं।"

"लोगों के मुँह म लगाम थोड़े ही दी जा सकती है क्या हर कोई हमारी बच्ची की भलाई का जिम्मेदार हो सकता ह ? लड़की बड़ी हो गई। क्या इसलिए लंगड़े, लूले, अन्धे के साथ बाँध दें। योग्य वर मिलते ही विवाह कर देंगे।"

"तुम वर को ढूँढो ही नहीं तो वह किस तरह मिल सकता है। फिर रामू का विवाह होना है। लच्ची का ब्याह होना है। वेंकटेश का होना है। शांता का किये बिना चुप बैठे रहे तो ···!"

"तो मुझे क्या करने को कहती हो ?"

"मैं कहती हूँ कि उठकर कुछ दौड़-धूप करके एक वर पक्का कर लो!"

"पिछला अनुभव भूल गईं क्या ?"

"ठीक, क्या सारी दुनिया इसी तरह है ?"

रावसाहब ने जिस पिछले अनुभव की ओर निर्देश किया, उसे तीन वर्ष बीत गए थे ? रावसाहब ने अपनी तरफ के एक आदमी से प्रस्ताव किया था। लड़का तभी बी० एस० सी० प्रथम श्रेणी में पास हुआ था। वह सुलक्षण युवक था। पढ़ा-लिखा था। इसलिए रावसाहब ने उस लड़के को बुलाकर बात-चीत करके उसकी स्वीकृति ले ली थी। किन्तु लड़के ने एक बात कही थी "मेरे माँ-बाप की स्वीकृति मिल जाय तो मैं तैयार हूँ।"

रावसाहब ने स्वयं खर्चा देकर उसके माता-पिता को बुलाया। उनकी खूब आव भगत की। माँ-बाप ने लड़की की अनेक परीक्षा की। उससे गवाकर देखा, पढ़वाकर देखा, उसके चलने का ढंग देखा, हाथ में सुई-धागा देकर धागा पिरोने को कहा और इस तरह आँखें तो ठीक हैं। यह निश्चय किया कि बड़े सीधे हैं जी ! वर के पिता ने पहले ही अपनी स्वीकृति दे दी। वर की माता ने कहा—"ठीक है। सोचकर घर से पत्र लिखूँगी। लेने-देने की बात कह दो तो अच्छा है।"

इसके उत्तर में मीनाक्षम्मा बोलीं, "हम सौ तोले सोने के गहने चढ़ायेंगे। वर के लिए चाँदी की थाली, लोटा, गिलास, चमचा, सोने की अंगूठी, कपड़ा-वपड़ा सब देंगे। स्वीकार या अस्वीकार करना आप-की मर्जी। अपनी बहू को आप जितना चाहे उतना दे सकती हैं।"

खूब आतिथ्य-सत्कार का उपयोग करके, बढ़िया दावत उड़ाकर, रावसाहब के खर्च से ही टैक्सी लेकर सारे नगर की सैर करके अन्त में अपने नगर को लौटकर चिट्ठी में लिख भेजा—

"हमारा लड़का उच्च शिक्षा के लिए इंगलैंड जाना चाहता है। आप उसके लिए दस हजार रुपया दें तो आपके साथ सम्बन्ध करने में हमें कोई रुकावट नहीं। वर और वधू को देने की चीजों में कमी नहीं करनी चाहिये।"

रावसाहब ने क्रुद्ध होकर तब से वर की खोज करना ही छोड़ दिया था। पर शांता के लिए वर के निश्चित होने तक वर की खोज बन्द नहीं हुई। मीनाक्षम्मा की तरफ से तकाजा भी बढ़ता गया।

रावसाहब बोले—

"मीना, वर निश्चित नहीं होता तो क्या मैं इस तरह निश्चित बैठा रहता?"

"कौन है जी? मुझसे कहना नहीं चाहिए क्या?"

"मैं कहूँ तो क्या तुम स्वीकार कर लोगी? या मुझे लोगों के पैर पकड़ने के लिए भेजोगी?"

"जो कुछ करोगे वह अपनी लड़की के लिए ही ना? वह वर कौन है जी?"

"कहावत है कि घर में मक्खन रहते घी उधार माँगने के लिए इधर-उधर भटकते हैं। हमारी बात तो वही हुई ना? हमारा वेंकटेश कैसा है जी?"

"ओहो मेरे मन में यह विचार पहले आया था। मैं कहना भूल

गई। दिव्य स्वभाव का लड़का है। मेरी पूरी स्वीकृति है। उससे पूछकर देखा है ?"

"सम्भव है वह स्वीकार कर लेगा।"

"और उसके घर वाले ? जैसा पीछे हुआ था वैसा ही हो तो ?"

"इस बात का डर नहीं हैं। मैंने सुन्दरराव से बात चलाई थी। उन्होंने नंजुण्डय्या को बुलाकर मेरे सामने ही पूछा था। उसने भी खुशी से स्वीकार कर लिया। अब लड़के की स्वीकृति लेने की जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है।"

"अच्छा इतना सब कर लिया और मुझसे एक बात भी नहीं कहनी चाहिए थी क्या ? तुम आजकल बहुत बुरे हो गए हो। ठहरो भीमराव और सुन्दरराव को आने दो उनसे खूब तुम्हारी स्तुति कराऊँगी।"

यह कहकर मीनाक्षम्मा हँसी। रावसाहब भी हँस पड़े।

उसी दिन रात को वेंकटेश और लक्ष्मण दोनों भोजन के बाद लक्ष्मण की कोठरी में बैठे पढ़ रहे थे।

मीनाक्षम्मा धीरे से अन्दर आई और बोली—"पढ़ रहे हो ?"

"आइये माता जी!" यह कहकर वेंकटेश ने उठकर चटाई बिछा दी।

मीनाक्षम्मा बैठकर बोली —"तू बैठ जा, वेंकटेश ! तुझसे एक बात कहनी थी इसलिए आई हूँ।"

"कहिये माँ जी !"

"मेरी एक प्रार्थना है भैया ! तुझे दिल बड़ा करके पूरी करनी चाहिये।"

"माता जी आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। उससे मेरा अश्रेयस् होता है। प्रार्थना न कहकर आपको आज्ञा देनी चाहिये।"

"वेंकटेश, तू अब तक वैसा ही करता आया है। जैसे हमारे रामू, लच्ची, गोपू हैं; वैसे ही तू भी है। तू पराया नहीं। मेरी इच्छा है कि भविष्य में भी वैसा ही रहे।"

लक्ष्मण बोला, "माता जी इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं। वेंकटेश सचमुच मेरे बड़े भाई की तरह है। जो कुछ कहना हो कहिए।"

"देख वेंकटेश, शान्ता को १६ वाँ वर्ष पूरा होने वाला है हमने निश्चय किया है कि इस साल उसका विवाह कर देना चाहिए। तू स्वीकार करे तो तुझे देकर विवाह कर देवें। यह इरादा है भैया !"

लक्ष्मण आश्चर्यचकित हो गया। माता जी ऐसा कहेंगी इस बात की उसने कल्पना भी न की थी। उसकी छाती उद्वेग से धड़कने लगी। वेंकटेश क्या कहेगा ? अस्वीकार करे तो ··· ··· आज की मित्रता टूट जायगी ना ?

वेंकटेश थोड़ी देर सोचकर बोला—"रावसाहब ने क्या कहा है माता जी ?"

"बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया है भैया ! यह विचार आया ही उनके द्वारा।"

"माता जी मेरे लिए बड़ी और पूज्य सब कुछ आप ही हैं। आप मेरे लिए जैसा निश्चय करेंगी वैसा करने को तैयार हूँ। आपके सम्बन्ध से बढ़कर और क्या सौभाग्य मेरे लिए हो सकता है जिसकी इच्छा मैं करूँ ?

मीनाक्षम्मा और लक्ष्मण दोनों के नेत्रों में आनन्दाश्रु आ गये।

"तुम्हारी सौ वर्ष की उम्र हो बच्चा !" यह कहकर मीनाक्षम्मा ने आशीर्वाद दिया।"

तब वेंकटेश लक्ष्मण से बोला, "किन्तु ··· एक शर्त है भैया !"

"शर्त क्या है भैया ? क्या नई बात पेट से निकाली ? क्या माँ के यहाँ से हटकर जाने की प्रतीक्षा कर रहे हो ? बतलाओ !"

"मेरे विवाह में तुम्हारा गाना हो तो मैं स्वीकार करता हूँ।"

अब लक्ष्मण के सामने एक कठिनाई आ उपस्थित हुई। वह बोला, "मैं गाऊँगा। पर वेंकू, विवाह में नहीं। तुम और शांता बैठ जाओ और मैं रोज गाऊँगा। अब तो ठीक है ना ?"

"नहीं जी, यों नहीं होगा। विवाह की संगीत-गोष्ठी तुम्हारी ही होगी। सबको मालूम तो हो कि मेरा साला कितना बड़ा संगीताचार्य है। यह मेरे लिए भी सम्मान की बात होगी।"

"तथास्तु ! मैं गाऊँगा।" यों कहकर लक्ष्मण ने अपनी स्वीकृति दे दी।

ग्यारह

विवाह का लग्न भी निश्चित हो गया। रावसाहब ने रामू को पूना को चिट्ठी लिख दी कि हो सके तो चार दिन के लिए आ जाओ। उसका उत्तर आया कि "चार दिन का मतलब है कि आने-जाने के दिन मिलाकर आठ या दस दिन लग जायेंगे। मैं इस समय इतने दिन नहीं निकाल सकता।" और चिट्ठी के अन्त में लिखा था, "इस संबंध के विषय में मुझसे एक बार पूछ लेते तो अच्छा होता।" रावसाहब ने चिट्ठी सावित्रम्मा को दिखलाकर बड़े दुःख के साथ कहा, "हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे सुख-दुःख में हमारा साथ दें, किन्तु वे हमारे ऊपर रौब गाँठते हैं।"

लक्ष्मण को अपार आनन्द हुआ। उसने कई बार सोचा था कि शान्ता विवाह के बाद हमारा घर छोड़कर दूसरे घर चली जायगी। उस बात का डर अब नहीं रहा। इसके अलावा वह जिसका हाथ पकड़ेगी वह कोई और नहीं मेरा घनिष्ठ मित्र वेंकटेश है।

गोपाली के उत्साह का पारावार नहीं। वेंकटेश का नाम लेते ही शान्ता जो लजाती उसकी हँसी उड़ाकर मजाक करने में गोपाली सबसे आगे था। मीनाक्षम्मा ने एक बार कहा कि "रामू घर पर होता तो अच्छा होता। उसके बिना घर सूना दिखाई पड़ता है।" तो उसके उत्तर में गोपाली ने स्पष्ट ही कह दिया कि "वह नहीं है तो अच्छा ही हुआ। बड़ी माँ जी चुप रहो। इस आनन्द के अवसर पर उसका

कुछ-न-कुछ खटराग लगा ही रहता। किसी की आँखों में आँसू लाये बिना उसको तसल्ली ही नहीं होती ?"

विवाह खूब धूमधाम से सम्पन्न हो गया। लड़के की तरफ के लोग अधिक न थे। वे गरीब हैं यह सोचकर रावसाहब ने उनसे हीनता का बरताव नहीं किया। धनी समधी मिलता तो जितनी उदारता से उससे बरताव करते उतनी ही उदारता से मन लगाकर आतिथ्य-सत्कार किया। आठ दिन तक लगातार उत्सव होता रहा। सहभोज-दावत नाश्ता-पानी किसी में भी कमी नहीं हुई। सुन्दरराव और भीमराव आपस में बाँटकर घर वालों से भी अधिक उत्साह से काम में लगे रहे।

लग्न-मंडप में ही उसी दिन सायंकाल लक्ष्मण के संगीत का प्रबन्ध हुआ था। नगर के सम्भ्रांत सज्जन और बहनें जमा थीं। सुन्दरराव और भीमराव काला लम्बा कोट पहनकर आये हुए अतिथियों का स्वागत कर रहे थे।

लक्ष्मण के सहपाठी ही बाजा बजाने वाले थे। अनंताचार्य के शिष्यों में पुहय्या फिडल के लिए और रंगप्पा मृदंग के लिए प्रसिद्ध थे। लक्ष्मण के गाने के साथ बाजा बजाने का अवसर मिलने से वे परम प्रसन्न थे। भैरवी वर्ण हो गया। उसके बाद एक-दो छोटे कीर्तन हुए। अतिथि लोग पान देकर दो-तीन मिनट बाद चले जाते हैं, परन्तु कोई भी वहाँ से जाता हुआ दिखाई न दिया। कीर्तनों के बाद लक्ष्मण ने 'हरिकाम्मोदी' और 'खरहरप्रिय' ये दो राग गाकर दिखलाये। विस्तृत रागालापन के लिए उसने 'तोडीराग' को लिया। जब उसका एक काल समाप्त हुआ तो नौ का घण्टा बजा। तब उसने दूसरे और तीसरे काल का उतना विस्तार न करके गाना समाप्त कर दिया।

आये हुए अतिथियों को जब यह मालूम हुआ कि गायक रावसाहब का दूसरा पुत्र है तो उनको अपार आश्चर्य हुआ। दूसरी रस्मों के लिए देर हुई जा रही है यह कहकर पुरोहित ने जल्दबाजी की। तब

लक्ष्मण ने एक-दो देव के नाम गाकर संगीत-गोष्ठी समाप्त कर दी।[1]

संगीत-गोष्ठी समाप्त होने पर सुन्दरराव ने गन्ध-हार और ताम्बूल देकर तीनों संगीताचार्यों का सम्मान किया। लक्ष्मण के गले में स्वयं पुष्प-हार डालते हुए उन्होंने "लक्ष्मण बेटा, तुम्हारा संगीत कैसा उत्तम था। साक्षात् सरस्वती देवी तुम्हारे कंठ में विद्यमान है। परमात्मा तुम्हें और भी विद्या, दीर्घायु और सम्पत्ति देकर तुम्हारा मंगल करे।" यह कहकर आशीर्वाद दिया। शामण्णा जी ने कपड़े से ढका हुआ एक तम्बूरा सुन्दरराव के हाथ में दिया। सुन्दरराव ने तम्बूरे पर से आवरण हटाकर उस पर हल्दी और रोली लगाकर और पुष्प-माला लपेटकर कहा, "लक्ष्मण तुमसे बढ़कर इसका अधिकारी और कोई नहीं। इसने बड़े-बड़े विद्वानों की सेवा स्वीकार की है। यह अब सुयोग्य पात्र के हाथों में पहुँच रहा है। ले लो!"

यह कहकर तम्बूरा लक्ष्मण के हाथों में पकड़ा दिया। लक्ष्मण ने उसे आँखों से लगाकर अपने माता-पिता को नमस्कार करके, फिर सुन्दरराव, शामण्णा और भीमराव को नमस्कार किया। सबने तरुण गायक को मन भरकर आशीर्वाद दिया। वेंकटेश ने प्रेम से साले का आलिंगन किया। उसके मन में बहुत-सी बातें थीं, पर मुँह से एक भी न निकल सकी। शान्ता ने गरदन उठाकर भैया को देखा। लक्ष्मण ने बहन के गालों पर धीरे से हाथ फेरा। तब वह स्वेद से कुछ भीग गया।

ज्योनार भी समाप्त हो गई। तब रावसाहब ने सबको उपहार दिये। सुन्दरराव और भीमराव ने उपहार लेने से इन्कार किया और रावसाहब की बात न चल सकी। तब मीनाक्षम्मा ने ही आकर उन्हें मनाया। वे बोलीं, "आप लोग बन्धु और कुटुम्बियों से भी बढ़कर हमारे बन्धु हैं। आप उपहार स्वीकार करेंगे तो उससे वरवधू का शुभ होगा।

---

१. **पुरन्धर दासादि सन्तों के बनाये कुछ भजन 'देव के नाम' कहलाते हैं।**

हम पर कृपा रखकर स्वीकार कर लें।"

तब निरुपाय होकर उपहार स्वीकार करके भीमराव बोले—"यदि आप ऐसा करेंगी तो हम रामू और लच्ची का शादी में आयेंगे ही नहीं।"

वर पक्ष के लोगों को, बाल-बच्चों से लेकर सब ही को उपहार देकर सन्तुष्ट कर दिया। सब लोगों ने रावसाहब की उदारता की शत मुख से प्रशंसा करके वधू-वर को मन भरकर आशीर्वाद दिया। समधी नंजुण्डय्या और समधिन भागीरथम्मा हरेक बात में एक मति से चलते थे। वे समझते थे कि बड़े घर वालों ने लड़के पर प्रेम और विश्वास के कारण हम-जैसे गरीब घर में लड़की दी है। गरीबी के कारण हमको तुच्छ न समझकर खूब अच्छी तरह से विवाह सम्पन्न किया, यह सोचकर उनके मन में रावसाहब का गौरव बहुत अच्छा बढ़ गया।

किन्तु वर पक्ष के सब ही लोग तो नंजुण्डय्या और भागीरथम्मा नहीं थे। समधी की एक चाची विवाह में पधारी थीं। उनका और उनकी दो राजकुमारियों का कितना ही आतिथ्य करें, वह काफी नहीं होता था।[1] सबेरा होते ही जनवासे में गर्म जल ले जाते समय ही उप्पिट्टु[2], केले और काफी प्रबंध होता था। फिर जब बराती विवाह के घर में (लड़की वाले के घर) आते थे, तो वहाँ फिर कुछ-न-कुछ उपाहार होता था। दोपहर को और रात को बढ़िया दावत होती थी। इतना होने पर भी ये तीनों देवियाँ यह कहे बिना न चूकती थीं कि "हमको आधापेट खिलाकर भूखों मार दिया। यह क्या विवाह है। सुनते थे बड़े घर वाले हैं। नाम बड़े दर्शन थोड़े।" समधिन बड़े

---

१. दक्षिण भारत में पर्दा-प्रथा न होने के कारण बरात में सिर्फ पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ भी जाती हैं।

२. एक प्रकार का नमकीन हलवा।

अच्छे स्वभाव की स्त्री थीं। उन्होंने कष्ट-सुख सब देखे थे। वे कितना ही समझायें, पर चाची पुट्टेकम्मा और उनकी दोनों राजकुमारियाँ लड़की वालों और विवाह के प्रबन्ध के विषय में कुछ-न-कुछ कहती ही रहती थीं। इसके अलावा पुट्टेकम्पा को बड़ा घमंड था कि मेरे और मेरी बेटियों के समान गीत जानने वाली कोई है ही नहीं। अक्षत डालना, आरती करना, तेल-हल्दी, फूल पहनाना, चन्दन लगाना, कुंकुम लगाना आदि प्रथाओं से सम्बन्ध रखने वाले गीतों के अलावा समधियों की हँसी उड़ाने के सैकड़ों गीत उनको आते थे। कन्या-पक्ष में उनके साथ प्रतिस्पर्धा में खड़ा होने वाला कोई था ही नहीं। शान्ता को भी वैसे गीत बिल्कुल नहीं आते थे। पुट्टेकम्मा का गर्व लक्ष्मण की संगीत-सभा होने तक रहा, पर तीसरे दिन से वह एकदम शान्त हो गया। समधी ने जब उनको और उनकी बेटियों को चौड़ी जरी किनारी की धर्मावरम् और अरलेपेटे की बनी साड़ियाँ भेंट दीं, तो उसके बाद से वे और सब लोगों से भी बढ़कर रावसाहब के घर वालों की प्रशंसा करने लगीं।

मीनाक्षम्मा के कन्धों पर से एक बड़ा बोझ-सा उतर गया। विवाह समाप्त होने पर उनके शरीर में कुछ सुस्ती दिखाई दी और ज्वर आने लगा। डाक्टर ने परीक्षा करके इन-फ्लुएज्जा बतलाया, कहा कि चिन्ता की कोई बात नहीं और दवा देकर चले गये। एक दो इनजेक्शन लगे। अब ज्वर आना बन्द हो गया। मीनाक्षम्मा उठकर चलने-फिरने लगतीं, तो फिर अचानक छाती में दर्द होने लगता। डाक्टर ने चेतावनी दी कि उनको पूरा आराम करना चाहिये और इस बात का खयाल रखना चाहिये कि मन में उद्वेग पैदा न हो।

विवाह-समारोह के परिणाम ने सब पर अपना प्रभाव दिखलाया। थोड़ा-थोड़ा ज्वर, अजीर्ण जुकाम आदि छोटी-मोटी बीमारियों ने

सब ही को सताया। ठीक चिकित्सा और उपचार के बाद सब हमेशा की तरह चलने-फिरने लगे। शामण्णा ने काली मिर्च, जीरा, पीपल आदि का काढ़ा तैयार करके नौकर-चाकर सब ही को पिला दिया। और थोड़ा स्वयं भी पी लिया। सर्दी-बुखार उनके शिकंजे से भयभीत होकर उनके पास फटकते हुए भी डरता था। रावसाहब ने भी शरीर झाड़कर अपना नित्यानुष्ठान और दिनचर्या आरम्भ कर दी।

बारह

रामू पूना से आया तो असन्तोष का भार सिर पर उठाये ही आया। उसकी अनुपस्थिति में शान्ता की शादी हो गई, इससे मानो उसके गौरव को धक्का लगा। शादी होने की बात को वह भूल जाता, पर वेंकटेश के साथ शान्ता की शादी कर दी गई, इससे तो उसके धैर्य का बाँध ही टूट गया। अब तो वेंकटेश घर-जमाई हो गया। पहले तो नौकर रंगा से लेकर रावसाहब तक सब कोई उस पर हुक्म चला सकते थे, पर अब स्थिति बदल गई। अब तो वेंकटेश को घर-भर में अग्रस्थान मिल गया। यह देखकर रामू आग-बबूला हो उठता था। जिससे मैं अपने जूतों पर पालिश करवाता था, उसीको अब जीजाजी कहकर पुकारना चाहिये ना, वह इसमें अपनी बड़ी हेठी समझता था। बात और भी बढ़ गई थी। रामू दूध में पड़ी हुई मक्खी की तरह भिनभिनाता रहता था।

विवाह में लक्ष्मण का गाना हुआ, सबने उसकी प्रशंसा की, शामण्णा ने उसको तम्बूरा भेंट किया, सब समाचार उसने ब्योरेवार सुना। मैं विवाह में नहीं आया, यह बहुत अनुचित हुआ, इस प्रकार दुखी होकर वह अपने-आपको धिक्कारता था। वह एल-एल० बी० का पहला वर्ष समाप्त करके आया है और एम० ए० का पहला सत्र पूरा करके आया है। एक और वर्ष में एम० ए० एल-एल० बी० हो जायगा। जो पुरस्कार मुझको नहीं मिला, वह लक्ष्मण और वेंक-टेश को घर बैठे-बैठे ही मिल रहा है ना ? इस प्रकार दुखी होते हुए 'अच्छा कभी मेरा भी समय आयेगा। कहावत है कि कभी सास का

जमाना होता है तो कभी बहू का जमाना होता है।' यह कहकर मन को तसल्ली देता था, किन्तु अपने असन्तोष को सैंकड़ों प्रकार से प्रकट करता रहता था सबके लिये पत्तलें रख दी गईं, भोजन परसा गया। उसी समय वह अपने कमरे के भीतर जाकर बैठ गया। इसी बात के लिए उसको गुस्सा था कि मुझे भोजन के लिए किसी ने बुलाया ही नहीं। परोसा हुआ भोजन ठंडा हुआ जा रहा था। तब रावसाहब स्वयं उठकर बेटे को मनाकर लाये और पत्तल पर बैठाया।

थोड़ा परसने पर कहता, "आधा पेट खिलाकर भूखों मारते हो क्या ?" चार चावल ज्यादा परोसने पर कहता, "मैं क्या पेटू दैत्य हूँ जो इस तरह मुझे भात परसते ही जाते हो ?" तीसरे पहर के नाश्ते के लिए उघिट्टु बनाते तो कहता, "हलवा क्यों नहीं बनाया ?" और हलवा बनाते तो कहता, "उघिट्टु क्यों नहीं बनाया ?" रामू के चंचल चित्त के अनुसार चलना उसकी माता के लिए असम्भव था। मीनाक्षम्मा रामू के लिए चिन्ता कर-करके अत्यन्त दुर्बल हो गई थीं। अन्त में उन्होंने चारपाई पकड़ ली। डाक्टर ने परीक्षा करके बतलाया, "हृदय की बीमारी है। अभी उग्रावस्था को नहीं पहुँची पर असावधानी करने से पहुँच जाने का डर है। बड़ी सावधानी से उपचार करना चाहिये।" और चले गये। यह सुनकर लक्ष्मण के सिर पर मानो आकाश टूटकर गिर पड़ा। डाक्टर की बात सुनकर रावसाहब की वही दशा हुई जो मृत्यु-दंड की आज्ञा सुनने से किसी कैदी की होती है।

मीनाक्षम्मा ने ही तब सबको तसल्ली दी। वे बोलीं, "जल्दी ही रामू और लच्ची का विवाह कर दीजिए ना! माघ और फाल्गुन में ही लग्न हैं। मेरी आँखों के सामने ही यह काम हो जाय।"

"मीना, तुम्हारी तबियत कुछ सुधर जाय। अवश्य ही यह विवाह जल्दी ही कर देंगे। किन्तु तुम ही बिस्तर पर लेटी रहो तो उठकर

दौड़-धूप करने वाला कौन है ?"

"मुझे क्या हुआ है जी ? ये डाक्टर लोग यों ही डरा देते हैं, और आप लोग डर जाते हैं। ब्याह पक्का कर दीजिये, फिर आप देखेंगे कि मुझे बीमारी रहती है या भाग जाती है।"

शान्ता के लिए जितने उत्साह से वर की खोज करते थे उससे भी सौ गुने उत्साह से लड़कियों की खोज होने लगी। रावसाहब के बेटों को अपनी लड़कियाँ देने के लिए कितने ही लोगों ने पहले ही स्वयं प्रस्ताव भेजे थे। उनके भेजे हुए जन्म-पत्र रावसाहब के सन्दूक में रखे थे।

रावसाहब के घर में आजकल लड़की की ही चर्चा रहती थी। रोज कोई-न-कोई लड़की लाकर दिखलाते। राम हरेक लड़की में कोई-न-कोई दोष निकालकर इन्कार कर देता। किसी का मुख काला था, किसी के मुँह के पास मस्सा था, कोई ठिगनी थी, तो कोई ताड़का की तरह ऊँची थी। रामू की ये बातें सुनते-सुनते सावित्रम्मा ऊब गईं।

"तू ऐसे ही कहता रह रामू ! अन्त में तुझे कोई लड़की नहीं मिलेगी, और ब्याह भी नहीं होगा।"

"नहीं होगा तो कोई चिन्ता नहीं। सब छोड़ दो अम्मा ! आज-कल क्या लड़कियों का अकाल पड़ गया है। वे तो कुकुरमुत्ते की तरह मिलती हैं।"

"बेटा, इस तरह हल्की बात मत कह ! शान्ता का ब्याह निश्चित करते समय अगर कोई इस तरह हमारी निन्दा करता तो हमें कैसा लगता ?"

"अच्छा, उस बात को जाने दो, छोड़ो माता जी !"

"यह छोड़ने की बात नहीं। आज सायंकाल चिकमगलूर के हिरण्यप्पा जी अपनी लड़की के साथ आने वाले हैं। तू घर से बाहर कहीं मत जाना। जिन्होंने देखा है, वे कहते हैं कि लड़की बहुत अच्छी है। यह

प्रस्ताव स्वीकार कर ले। उन लोगों की हालत बहुत अच्छी है। लाखों की हैसियत है। वे बड़े भारी काफी-प्लाण्टर हैं। उनके काफी के बगीचे दूर-दूर तक फैले हुए हैं। सोच ले भैया !"

रामू ने तो अच्छी तरह सोच ही लिया था, और निश्चय भी कर लिया था। हिरण्यप्पा के धनी होने की बात उसने भी सुनी थी। मलनाड़ (मैसूर राज्य का पश्चिमोत्तर का पहाड़ी प्रदेश) के काफी का रोजगार करने वालों की ओर से वे व्यवस्थापिका-सभा के सदस्य भी हुआ करते थे। सरकारी अधिकारियों में भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। बड़े-बड़े अधिकारी जब चिकमंगलूर आते तो उनका आतिथ्य हिरण्यप्पा ही किया करते थे। सरकारी क्षेत्रों में और धनियों में दोनों जगह उनकी बड़ी इज्जत थी।

रावसाहब कुछ सोच में पड़ गये। जब बड़े लोग स्वयं ही सम्बन्ध करने की इच्छा से आये हैं तो रामू कोई-न-कोई दोष निकालकर उन्हें लौटा दे तो क्या करना ? रावसाहब यह भी नहीं चाहते थे कि जिस लड़की को लड़का नहीं चाहता उसीको जबरदस्ती लड़के के गले बाँध दें। उन्होंने हिरण्यप्पा की लड़की स्वयं नहीं देखी थी। रामू क्या कहेगा, यह अनुमान नहीं किया जा सकता था।

उन्होंने शामण्णा को बुलाकर पूछा, "हिरण्यप्पा की लड़की तुमने देखी है शामा ?"

"बहुत पहले देखी थी, तब वह तीन-चार वर्ष की रही होगी।"

"तो कैसी है ?"

"कुछ है। गोल गेंद की तरह है। दोनों गाल दो नारंगियों की तरह हैं। माथा छोटा है। दोनों कान उस मुख पर बड़े मालूम होते हैं। एक हाथी के बच्चे की तरह लगती है। खास बात यह है कि वह बड़े घर की बेटी है। अच्छी तरह से जेवर-कपड़ा पहना देने पर सब दोष ढक जायेंगे।"

"इस प्रस्ताव को रामू स्वीकार कर लेगा ?"

'आपको इसमें सन्देह क्यों है महाराज ? इस सम्बन्ध को रामू अवश्य ही स्वीकार कर लेगा।"

"यह क्यों शामा ? कैसी-कैसी लड़कियाँ आईं और चली गईं। हरेक में रामू कोई-न-कोई दोष निकाल देता था। अब इसको स्वीकार कर लेगा क्या ?"

"दुनिया ही ऐसी है महाराज ! जो बहुत दोष निकालते हैं, उन्हें ऐसी ही लड़की पसन्द आती है। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह बात सायंकाल आप स्वयं ही देख लेंगे।"

शामण्णा का अन्दाज ठीक निकला। रामू ने हिरण्यप्पा की लड़की पसन्द कर ली। वैशाख में व्याह पक्का हो गया। लग्न-पत्रिका लिखाकर छपने को देकर आगे का प्रबन्ध करने के लिए हिरण्यप्पा अपने गाँव को चले गये।

इसी तरह से मालूम होता है कि इस वर्ष रावसाहब के घर में सब ही के लिए गुरु का बल प्रबल था। रामू के व्याह के मौके पर ही लक्ष्मण का ब्याह पक्का हो गया।

हिरण्यप्पा के एक निकट सम्बन्धी श्री वेंकटसुब्बय्या बेंगलूर में एक बैंक के खजाञ्ची थे। वे जब हिरण्यप्पा के घर विवाह के लिए आये थे, तब उन्होंने अपनी लड़की के सम्बन्ध में प्रस्ताव किया था। लड़की भी उस विवाह में आई थी। सबने उसको देखा था। गाना गवाकर भी देखा था।

मीनाक्षम्मा ने लड़की को पास बैठाकर उससे बातचीत भी की थी— "बेटी, तेरा नाम क्या है ?"

"जयलक्ष्मी !"

"स्कूल में पढ़ती है ?"

"हाँ, पिछले साल लोअर सैकण्डरी परीक्षा में बैठी थी। पास हो

गई। इस साल आठवीं क्लास में पढ़ती हूँ।"

"तेरे माँ-बाप तेरा विवाह करना चाहते हैं। तेरी क्या इच्छा है ?"

लड़की ने लज्जा से सिर झुका लिया।

"जयम्मा, क्या तूने मेरा लड़का देखा है ?"

"न......हीं......"

मीनाक्षम्मा ने लक्ष्मण को बुलाकर पास बैठाकर कहा, "देख जया, यही मेरा बेटा लक्ष्मण है। वह हमारे रामू की तरह तेज नहीं है। बिल्कुल बुद्धू है। स्कूल में पढ़ना छोड़कर संगीत सीख रहा है। सोच ले, तू पढ़ी-लिखी लड़की है। ऐसे बुद्धू से कैसे विवाह करेगी ?"

लक्ष्मण खिलखिलाकर हँसते हुए बोला, "क्यों, माता जी, बाहर वालों के सामने मुझे बुद्धू-बुद्धू कहकर क्यों अपमान करती हो ?"

"हाँ भैया, तूने क्या बहुत परीक्षायें पास की हैं ? तू पढ़ने में बड़ा तेज है, यह झूठमूठ कैसे कहूँ ? जयम्मा, परीक्षायें पास करके कोई आदमी होशियार बन सकता है, पर बुद्धू होकर हमारे लच्ची की तरह गाना बहुत कठिन है। तम्बूरा लेकर जब वह गाने बैठता है तो ऐसा मालूम होता है कि साक्षात् भगवती सरस्वती गा रही हैं।"

जयम्मा ने पूछा, "क्या मैं सुन सकती हूँ ?" तो लक्ष्मण धीरे से बाहर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

माता ने हाथ पकड़कर उसे बैठा दिया और बोली, "बेटी, क्या तूने भी कुछ संगीत सीखा है ?"

"हाँ, माता जी, कुछ वीणा बजाना सीखा है।"

लक्ष्मण ने कहा, "अच्छा वीणा सीखी है ? क्या मैं सुन सकता हूँ ?"

तो मीनाक्षम्मा ने व्यंग के साथ कहा, "हाँ, सुन सकता है। सिर्फ तू किसी के सामने मत गाना। बाकी सबको तेरे सामने गाना चाहिये। जयम्मा गाना स्वीकार भी करे तो मैं उसे मना कर दूँगी।"

"तुमको मुझ पर हमेशा इतना ही प्रेम है, माँ ! झट से तुम दूसरों की तरफ हो जाती हो।"

"हाँ लच्ची, तू जानता है कि क्यों ? जयम्मा, तू भी सुन ! लच्ची मेरे पेट से पैदा ही नहीं हुआ है। एक बार हमारे गाँव में बड़ा अकाल पड़ा था। तब कोई गरीब दम्पति एक लड़का लाये। तब मैंने दया करके एक सूप भर रागी देकर उसे खरीद लिया। उसे अपना ही बच्चा समझकर पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है।"

यह कहकर खिलखिलाकर हँस पड़ीं। लच्ची की भी हँसी रोके नहीं रुकी। जयम्मा अपना मुँह ढककर हँस रही थी।

लक्ष्मण ने धीरे से माँ के कान में कहा, "वीणा मँगवाओ, अम्मा !"

"मँगवाती हूँ। यदि तू एक कीर्तन गाने का वचन दे तो।"

"यहाँ नहीं चाहिये माँ, यहाँ मेरी परीक्षा क्यों ?"

"इसलिए कि मैं जानती हूँ कि तू परीक्षा में फेल नहीं होगा। लच्ची तू मुझसे ही इतनी मनावन···"

"अच्छा माँ,···जैसा तू कहे वैसा ही सही।"

यों कहकर लक्ष्मण ने स्वीकार कर लिया। जयम्मा ने वीणा लाकर तीन-चार कीर्तन बजाकर सुनाये। जब वह "ब्रोचेवा, रे वरुरा राघवा" (हे राम आ आ) यह तेलुगु-कीर्तन गाने लगी तो लक्ष्मण की आँखों में आँसू आ गए। उसे ऐसा मालूम होता था, मानो ये शब्द उसे ही सम्बोधन करके कहे जा रहे हैं। जयम्मा का संगीत समाप्त होते ही मीनाक्षम्मा ने वीणा लक्ष्मण के हाथ में दे दी। लक्ष्मण ने उसके तार ठीक करके, तम्बूरे की तरह उसका उपयोग करके 'नम्बि केहवरिल्ला श्रीहरिय' यह देव का नाम गाया।

मीनाक्षम्मा इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुई। वे बोलीं, "लक्षणपूर्वक

कोई राग गाकर कोई कीर्तन गा भैया !"[१]

तब लक्ष्मण ने मध्यमावती राग में 'अलकलल्ला' यह कीर्तन गाया। वह गाने में इतना तल्लीन हो गया कि उसे पता ही नहीं चला कि कमरे में कौन आया और कौन गया, और जब गाना समाप्त हुआ तो उसने देखा कि उसका कमरा लोगों से भर गया था। विवाह में आए हुए लोगों में से आधे वहाँ उपस्थित थे। यह सब देखकर वह लजा गया।

हिरण्यप्पा सामने आकर बोले, "वैसे ही जरा अठाणा राग तो गाओ भैया !···"

आधे मन से स्वर मिलाते हुए लक्ष्मण ने 'अनुपम गुणाम्बुधि···' यह कीर्तन गाकर सुनाया। सबने शाबाशी दी !

हिरण्यप्पा बोले, "संगीत इसी का नाम है भैया, यों गाने को तो सब लोग गाते हैं।"

भीड़ के छँट जाने पर जयम्मा को अन्दर भेजकर मीनाक्षम्मा बोलीं, "लच्ची, यह लड़की तुझे पसन्द है ना ?"

"तुम्हें पसन्द आ गई तो सब ठीक है, मुझसे क्या पूछती हो ?"

"सोने-जैसी लड़की है। कितना विनय है, कितना गाम्भीर्य है। कुछ भी कमी नहीं। कुछ भी घमंड नहीं। मुझे तो बिलकुल पसन्द है······।'

"ऐसी बात है तो मुझे भी स्वीकार है···"

"मैं उनसे कह देती हूँ।" यह कहकर उठीं।

लच्ची भी उठकर बोला,

---

१. देव के नामों का गाना बहुत सीधा-सादा होता है, उसके लिए राग-रागिनी के ज्ञान की जरूरत नहीं और संगीत-शास्त्र से अनभिज्ञ लोग भी उन्हें गा सकते हैं। रागादि का ज्ञान दिखाने के लिए कीर्तन गाए जाते हैं।

"माँ···माँ···!"

"क्या बात है बेटा ?"

"तब···तुमने कहा था ना कि रागी देकर मुझे खरीदा था। वह बात सच है क्या ?"

"मजाक में कहा था बेटा लच्ची ! उसे सच मत समझना। लड़की लजाती थी। कुछ घनिष्ठता पैदा करने के लिए यों ही मजाक की थी। इतनी आयु हो जाने पर भी तू अभी तक बच्चा ही है लच्ची !"

"हाँ, माँ, तेरे आगे सदा मैं बच्चा ही रहूँ यही मुझे घमंड है।"

विवाह की बात पहले वेंकट सुब्बय्या जी ने उठाई थी। उसके बाद वे इस विषय में कुछ बोले ही नहीं।

लक्ष्मण का गाना सुनकर हिरण्यप्पा जी इस सम्बन्ध को किसी-न-किसी तरह पक्का करने को उत्सुक थे। वे बोले, "क्या है वेंकट सुब्बू? विवाह की बात वहीं रोक दी। क्या मैं रावसाहब से प्रस्ताव करूँ ?"

"जरा ठहरिए मामा जी, लड़की से एक बार और पूछकर निश्चय करें।"

"सन्देह किस बात का है ? कोई सन्देह हो तो जल्दी ही उसकी निवृत्ति हो जाय।"

"सब ठीक है।"

"ऐसी बात है तो···।"

"लड़का ज्यादह शिक्षित नहीं है, यही एक कमी है। बहुत दिनों से उसकी माता की यह इच्छा थी कि लड़की एम. ए. पास लड़के को दें।

"अरे पगले, इस सूखे एम. ए. पास करने से क्या आता-जाता है ? उस पर मिट्टी डालो। उस लड़के ने पी. एच. डी. किया है। कल उसका गाना तुमको सुनना चाहिए था। जया ने तो गाना सुना है, वह क्या कहती है ?"

"उसके कहने ने ही तो मेरी जान आफत में डाल दी है। वह

कहती है कि "इनके सिवाय किसी और से मैं विवाह करूँगी ही नहीं। बेचारी बच्ची है, वह क्या जानती है ?"

"इन बातों के विषय में बच्चे जितना जानते हैं, उतना मैं और तुम जानते तो काफी होता। देखो, जया बुद्धिमती है। कुछ तकलीफ आ उपस्थित होने पर उसे ठीक-ठाक करके जाने की योग्यता उसमें है। मैंने सुना है कि लड़के ने लड़की को पसन्द कर लिया है। सबसे बड़ी बात यह है कि जया को मीनाक्षम्मा-जैसी सास मिलेगी। उससे अधिक सौभाग्य और क्या चाहिए ? हमारे घर के विवाह में ही तुम देखते हो ना ? उनकी चाल-ढाल कितनी उदार है ? ऐसे समधी सैकड़ों लोगों को भी सन्तुष्ट कर सकते हैं। मेरी बात सुनो, इस सम्बन्ध को पक्का करके भाद्रपद में लग्न है, तभी यह मंगल-कार्य समाप्त कर दो।"

हिरण्यप्पा की बात टाली नहीं जा सकती थी। कुटुम्ब में ही नहीं, पूरे कुल में उनका स्थान बड़ा ऊँचा था। वेंकट सुब्बय्या ने बड़ा मन करके 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर लिया।

रामू ने क्रोध तथा झगड़ा करने का अपना स्वभाव विवाह में भी नहीं छोड़ा। एक दिन इस पर कुपित हो गया कि काफी आने में देर हो गई। होम करते समय घी का धुआँ आँखों और नाक में भर गया। इसी पर वह गुस्से में भर गया। एक और दिन उसने कहला भेजा कि मेरी पत्नी पद्मा ही दोपहर की काफी लावे। गाँव-कस्बे की लड़की ठहरी। साथ में ही वह केवल पुराने ढंग के वातावरण में पली थी। उसने स्वीकार नहीं किया। जब सब घर वालों ने उसे बहुत समझाया तो वह काफी और नाश्ता लेकर पति के कमरे के दरवाजे के पास रखकर भाग आई। रामू ने आग-बबूला होकर थाल में लात मार दी। दालान में बिछे हिरण्यप्पा जी के नये कालीन पर काफ़ी का अभिषेक हो गया।

मजाक और रामू में बड़ी दुश्मनी थी। हिरण्यप्पा जी के पुरोहित शाम भट्ट बड़े हास्य-प्रिय थे। यद्यपि उनका हास्य चार पीढ़ी पुराना था, तो भी भट्ट जी में यह विशेषता थी कि वे उसे निर्दोष ढंग से कहना जानते थे। पहले दिन ही रामू ने भट्ट जी से अपनी अप्रसन्नता प्रकट की।

घनिष्ठता के साथ भट्ट जी ने रामू को एक वचन में सम्बोधन किया था। तिस पर रामू बोला, "भट्ट जी, यह तू-तड़ाग छोड़ो, यदि तुम एक वचन में बोलोगे तो मुझे भी वही करना पड़ेगा।[1]

यह सुनकर भट्ट जी भौंचक्के रह गये। रामू भी 'तू' शब्द का प्रयोग करेगा इस बात से डरकर उन्होंने 'जामाता महाराज, यहाँ पधारिए, यहाँ विराजिए, यहाँ तशरीफ रखने की कृपा कीजिये।' इस तरह से अत्यन्त आदर करना प्रारम्भ कर दिया। रामू मन में तो कुढ़ता रहा, पर दूसरा उपाय न होने के कारण उसे चुप रहना पड़ा।

उरुटणे नामक रस्म में वर के साथ मजाक किया जाता है। तब भट्ट जी की हास्यप्रियता ने अपनी पूरी कलायें दिखलाईं। पद्मिनी को उरुटणे की उक्तियाँ सिखलाते हुए वे

"सास के बेटे, बन्दर के बच्चे,

ससुर के बेटे, चमेली के फूल,

मुझको तो यही सुहात, हमरे घर बासी भात, (धोबी रामचन्द्रजी, आपके केले के तने के समान चरणों में मैं हल्दी लगाती हूँ।"

इस तरह की हास्योक्तियाँ जोड़ देते थे। रामू पहले दिन तो सब-कुछ सुनकर चुप रह गया। दूसरे दिन भट्ट जी के 'सास के बेटे, बन्दर

१. कन्नड भाषा में 'तू' सर्वनाम अपमान-सूचक नहीं समझा जाता। उसे हिन्दी के 'तुम' के तुल्य ही समझना चाहिए। पुत्र भी प्रायः पिता को तू ही कहकर पुकारता है। 'तू' शब्द घनिष्ठता का सूचक है और 'तुम' शब्द दिखाऊ शिष्टाचार का।

के बच्चे' ये शब्द उच्चारण करते ही सामने रक्खा हुआ दर्पण उठाकर भट्ट जी के मुँह के सामने करके "यह बात मेरी अपेक्षा आप ही पर अधिक लागू होती है भट्ट जी !" यह कहकर उनको मुँहतोड़ जवाब दे दिया। उस दिन से विवाह में होने वाले समधियों के गीत आदि सब तरह के हँसी-मजाक बन्द हो गए। समधियाने के सभी लोग बहुत ही असन्तुष्ट हुए। सावित्रम्मा बेटे की चाल-ढाल देखकर ऊब गईं, और आँखों में आँसू भरकर बोलीं, "सिर्फ पढ़ने से कुछ भाग्य नहीं बनता, आदमी में गुण होने चाहिएँ।"

विवाह किसी तरह से समाप्त हो गया। कोई भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। हिरण्यप्पा जी ने खर्च में कोई कमी नहीं रखी, किन्तु अतिथि सन्तुष्ट नहीं हुए। सब कोई रामू की कड़वी जबान की चर्चा करते थे। कटुभाषिणी कावेरम्मा तो साफ ही बोल उठीं, "ठीक हुआ, छोड़िये ना। जैसे को तैसा। लड़की का रूप और लड़के का गुण, दोनों का ठीक मेल मिल गया।"

तेरह

इसी तरह से होते-होते लक्ष्मण का विवाह भी आ गया। लक्ष्मण की इच्छा के अनुसार सब काम एक ही दिन में समाप्त कर दिया गया। रामू पूना में था। वह विवाह के लिए आकर फिर लौट गया। सबने बड़ी खुशी जाहिर की कि छोटे भाई पर इतना सौजन्य दिखलाया।

मीनाक्षम्मा की दुर्बलता दिन-पर-दिन बढ़ती जाती थी, पर वे उसे प्रकट नहीं करती थीं। एक के बाद एक विवाह के परिश्रम ने उन को बिल्कुल कृश कर दिया था। उन्होंने चारपाई पकड़ ली। सायंकाल के समय हल्का ज्वर रहने लगा। और उससे उनकी दुर्बलता और भी बढ़ती जाती थी। ज्वर के साथ जोर की खाँसी भी प्रारम्भ हो गई। डाक्टर ने यह कहकर कि "फेफड़े को खतरा है, सम्भव है न्यूमोनिया हो," गरम पानी की रबर की थैली और ऐण्टि फ्लोजस्टीन का व्यवहार आरम्भ किया। खाँसी बन्द होने पर ऐसा मालूम होता था मानो पुनर्जन्म हुआ हो। सारी छाती में जलन थी।

डाक्टर की चिकित्सा से कभी-कभी थोड़ा फायदा दिखलाई देता था, और फिर वही दशा हो जाती थी। जैसे रुका हुआ प्रवाह बाँध को तोड़कर निकलता है, वैसे ही और भी जोर से खाँसी आरम्भ हो जाती थी। माता की अवस्था ने लक्ष्मण के चैतन्य को हिला दिया। उसका मन ही किसी बात में नहीं लगता था। वह माता के बिस्तर से हिलता ही नहीं था। उसका सब काम स्वयं करता था। बीमारी के विषय में लक्ष्मण को सन्देह था। एक दिन जब डाक्टर रोगिणी को

देखकर जाने लगे तो वह उनके साथ-साथ चला और बोला—"डाक्टर साहब !"

"क्या बात है लक्ष्मण राव ?"

"हमारी माता को क्या सचमुच ही निमोनिया है ? जो कुछ है बिना संकोच बतला दीजिए !"

"उतना ही है। घबराइये नहीं। जान को कुछ जोखिम नहीं है।"

"आप मेरे मन की तसल्ली के लिए कुछ छिपाइए नहीं। कृपा करके सच-सच बतला दीजिये।"

"लक्ष्मणराव, उन्हें निमोनिया नहीं, क्षय है।"

"जा···न···"

"बच सकती है। किन्तु शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। हृदय, फेफड़े, खून सब कमजोर हो गये हैं। अच्छी तरह शुश्रूषा और देख-भाल की जाय तो प्राणों को जोखिम नहीं रहेगी।"

"जान बची" यह कहकर लक्ष्मण ने लम्बी साँस ली।

शुश्रूषा का डाक्टर के लिए कहना ही आसान था। माँ को एक प व दूध पिलाने में लक्ष्मण का नाक में दम हो जाता था। मीनाक्षम्मा को शुश्रूषा में विश्वास ही नहीं था। तब लक्ष्मण और शान्ता ने धरना देना शुरू कर दिया। उन्होंने कहा कि जब तक माता जी भोजन नहीं करेंगी तब तक हम भी भोजन नहीं करेंगे। तब बच्चे दुबले न हो जाएँ इस डर से मीनाक्षम्मा ने दिया हुआ दूध आदि पथ्य ग्रहण करना आरम्भ किया।

रावसाहब को बड़ी चिन्ता रहने लगी। उन्होंने घर की सारी जिम्मेदारी सावित्रम्मा को सौंप दी और स्वयं एकाग्र चित्त से 'श्रीमद्रा-मायण' के पारायण' के लिए बैठ गये। घर में लगातार नवग्रह जप, सूर्य नमस्कार, सत्यनारायण-पूजा आदि होने लगीं। जिस किसी ने

जो पूजा, जप, अनुष्ठान बतलाया, राबसाहब ने तुरन्त उसका प्रबन्ध कर दिया। वे भीमराव के साथ 'राय के वृन्दावन' को जाकर नमस्कार करके आया करते थे। रावसाहब के मुख पर झुर्रियाँ दिखाई देने लगीं और सिर पर कोई-कोई बाल सफेद होने लगे।

मीनाक्षम्मा की बीमारी का समाचार होसहल्ली में जा पहुँचा। जब शामण्णा लगान वसूल करने गाँव गये तो उन्होंने मीनाक्षम्मा की बीमारी का खबर रंगेगौडा से कही। उसी सप्ताह रंगेगौडा हाथ में केले का एक चरखा लेकर और झोले में १०-२० कच्चे नारियल डालकर रावसाहब के घर आ पहुँचा।

जब मीनाक्षम्मा के सामने वह आया तो पहले तो उसने उन्हें पहचाना ही नहीं। वह देखकर कि वे सूखकर काँटा हो गई हैं, उसकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे। वह उन्हें साष्टांग प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया।

मीनाक्षम्मा ने उसे देखकर कहा, "कौन है ? रंगप्पा है ?" उनकी आवाज बहुत धीमी थी, और ध्यान देने पर ही सुनाई पड़ती थी।

"हाँ, माई जी !"

"रंगप्पा, कैसे आया, भैया ?"

"यहाँ कचहरी में कुछ काम था। तुमै देखनै कू इंघै आ गया। इत्ते दिन हो गये और तुमनै बीमारी की खबर भी ना भेज्जी।"

"ऐसी कौन-सी बड़ी बात थी ? बाल-बच्चे सब अच्छे हैं भैया ?"

"हाँ, माई जी !"

"तेरी बेटी चेन्नी कै बाल-बच्चा हुआ क्या ?"

"हाँ, लौंडा हुआ है।"

"उसका नाम क्या रक्खा ?"

"करिया !"[१]

"कृष्ण जी का नाम हुआ ना ? तेरा लड़का क्या करता है ?"

"मेरी गैल खेती का काम करै।

"लच्चक्का अच्छी तरह है ना ?"

"हाँ, माई जी, अब कुटुम्ब ठीक हो गया। उसनै भी अच्छी तरौ रक्खा। मरद औरत प्रेम से रहै। माई जी, तुम्हारा आसिरबाद है, टुट्टा हुआ घर तुमनै जोड़ दिया।"

"सब कू एक दफैं देखने कू जी करै है रंगप्पा ! तेरी गाय मुझे याद करै है ?"

"उसका दुःख कहा नहीं जाता। तुम्हारे खूट्टे पै दिन मैं सौ बेर दौड़-दौड़ कै जावै। गला फाड़-फाड़ कै रम्भावै।"

"गूँगा प्राणी है। वह भी मुझे भूली ना।"

"अजी माई जी, तुम हम सबकी माँ हो। तुमै कौन भूल सकै ? गाँव तो तुमनै छोड़ दिया। हरेक आदमी आँसू बहावै। मानो गाँव की लछमी चली गई। तुम कब आओगी ?"

"आऊँगी भैया। जरा तबीयत सुधर जाय तो रामू और लच्ची की बहुओं कू साथ लेक्कै आऊँगी। उठ, भोजन कर ले !"

यह कहकर उसका आतिथ्य किया। रंगेगौडा ने गाँव पहुँचते ही माता जी का पूरा-पूरा समाचार सबको सुनाया। गाँव वालों ने मनौती मनाई कि माता जी अच्छी हो जायँगी तो गाँव के सामने की मारम्मा देवी को एक भैंसे की बलि चढ़ायेंगे। भट्ट जी से कहकर नंजुडेश्वर (महादेव) के मन्दिर में तेल के दिये का प्रबन्ध किया। तीन-तीन दिन में एक बार एक-एक आदमी बारी-बारी से बंगलौर जाकर माता जी के स्वास्थ्य का समाचार लाकर सब गाँव वालों को बतलाता था। रामू

---

१. 'करि' कन्नड भाषा में काले को कहते हैं, जिसका मतलब कृष्ण से है।

के पूना में रहने से बहुत सुविधा हुई। वह वहाँ से हरेक सप्ताह उत्तम-उत्तम फल भेजता रहता था। पूना के अंजीर मीनाक्षम्मा को बहुत अनुकूल पड़ते थे। एक-दो महीने में उनमें इतनी ताकत आ गई कि वे उठकर घर में ही चल-फिर सकें।

रावसाहब ने अब कुछ देर सोना प्रारम्भ किया। परीक्षा समाप्त करके अब रामू घर लौटा। मीनाक्षम्मा के स्वास्थ्य-लाभ से उसको भी प्रसन्नता हुई।

उसने भी शामण्णा के सामने शेखी बघारी, "देखो ना, मेरे भेजे हुए फलों में कितनी तासीर थी।"

शामण्णा उसकी गर्वोक्ति को नहीं सह सके और यह दिल को चुभने वाली बात कही, "फलों की सृष्टि तुमने ही की है ना ? सिर्फ खरीदकर ही नहीं भेजे !"

रामू की परीक्षा का परिणाम निकला। एल-एल. बी. में वह फेल हो गया था, पर एम. ए. में पास हो गया था। रामू को भी दुःख के साथ आश्चर्य भी हुआ। एल-एल. बी. में कैसे चूक गया ? 'विश्व-विद्यालय वाले अन्धे हैं' यह कहकर उसने दुखी होकर अधिकारियों को गाली दी।

चौदह

उसी वर्ष गोपाली मैट्रिकुलेशन परीक्षा में बैठा था। दुर्भाग्य से वह फेल हो गया। गोपाली परीक्षाओं को पास करने के विषय में रामू का अनुसरण न करके लक्ष्मण का अनुसरण करता था। लोअर सैकंडरी की परीक्षा पास करने में भी उसे दो वर्ष लगे थे। उसी रास्ते पर इस बार भी चलकर वह मैट्रिकुलेशन में भी फेल हो गया।

गोपाल के फेल होने का एक कारण था। स्कूली पढ़ाई उसे पसंद नहीं थी। उसको साहित्य से बहुत प्रेम था। इतिहास से भी उसे घृणा नहीं थी। स्कूल में उसे साहित्य और इतिहास के साथ गणित (रेखा-गणित, बीज गणित इत्यादि) भूगोल, नागरिक शास्त्र इत्यादि विषय पढ़ने पड़ते थे। भाषाओं में वह जितना तेज था, गणित में उतना ही मन्द था। परीक्षा में भी गणित ने ही उसे धोखा दिया।

स्कूली शिक्षा-पद्धति से गोपाल बहुत ऊब गया था। साँचे में बनाई हुई ईंटों की तरह वहाँ सबको एक ही लाठी से हाँका जाता था। वह सोचता था कि सबको एक ही साँचे में ढालना निर्जीव यांत्रिक पद्धति है। इस शिक्षा से विद्यार्थियों की पीठ टूट जाती है और वे परावलम्बी हो जाते हैं, यह उसने अपनी आँखों से देखा था।

उसका मन विशेषतः साहित्य की ओर दौड़ता था। पाठ के लिए शेली कवि का एक ही पद्य काफी था, पर सिर्फ उसीको पढ़ने से गोपाली को सन्तोष नहीं होता था। वह शेली के सब काव्य, उसका जीवन-चरित्र, उसके तथा उसके काव्यों के विषय में प्रकाशित आलोचनायें पढ़कर शेली के विषय में अपनी सम्मति भी प्रकट कर देता था।

कभी-कभी ऐसा होता था कि गोपाली के अध्यापक देखते थे कि किसी विषय में उनकी अपेक्षा भी उनके शिष्य को अधिक ज्ञान है और इस महापराध के लिए वे उसको दंड देते थे।

नये विचारों और नये तत्त्वों को सीखने के लिए गोपाली का मन बहुत उत्सुक रहता था। इसके लिए कितना भी परिश्रम करना पड़े, तो वह उसकी परवा न करता था। उसकी उम्र के लड़के पिता के दिये हुए पैसे कालर-टाई आदि खरीदने में खर्च करते थे, किन्तु वह उन्हें पुस्तकें खरीदने में ही खर्चता था।

गोपाली अपने स्कूल के अंग्रेजी और इतिहास के अध्यापकों का बहुत आदर करता था। उस शिक्षकवृन्द में दोनों ही विद्वान् थे। दोनों अपने-अपने विषय के पूर्ण पंडित थे। इसके अलावा वे यह भी चाहते थे कि उनके शिष्य सच्ची विद्या सीखकर उन्नति करें।

एक दिन इतिहास के घंटे में एक पाठ हो रहा था। अध्यापक इंगलैंड का इतिहास बतलाते हुए रानी मेरी के विषय में कह रहे थे। जिन लेखकों ने उसके विषय में अधिक लिखा है उनके विषय में वे बतला रहे थे। तब गोपाली ने पूछा—"रेनाल्ड्स का लिखा हुआ 'मेरी कुइन आफ स्काट्स' (स्काटलैंड की रानी मेरी) नामक उपन्यास कैसा है?"

अध्यापक के आँख, कान, नाक सब लाल हो गये। उनको इतना क्रोध आया कि वे उसे रोक न सके।

"गोपालराव !"

"सर !"

"मैं समझता था कि तू अच्छा लड़का है। अच्छी पुस्तकों को पढ़ने में तेरी रुचि है। मुझे मालूम नहीं था कि तू रेनाल्ड्स-जैसे कुत्सित लेखकों की पुस्तकें आसक्ति से पढ़ता है। अब तो मालूम हो गया।"

"क्षमा कीजिये सर ! आपने गलत समझा। मैंने अब तक

रेनाल्ड्स का एक भी उपन्यास नहीं पढ़ा। आप मेरी के विषय में कह रहे थे, मैंने केवल इतना ही पूछा कि रेनाल्ड्स का लिखा 'मेरी कुइन आफ स्काट्स' नामक उपन्यास कैसा है ?"

अध्यापक के क्रोध का पारा और भी चढ़ गया।

"अपराध करके फिर झूठ बोलता है। गुस्ताख। क्लास से बाहर चला जा !"

यों धमकाया। गोपाल को बड़ा दुःख हुआ वह सोचने लगा कि अध्यापक बिना अपराध के ही मुझ पर इतने नाराज हैं। वह उनकी बात काटना नहीं चाहता था, इसलिए पुस्तकें बगल में दबाकर सीधे 'पब्लिक लाइब्रेरी' की तरफ चल दिया।

उस दिन से तीन दिन तक उसने स्कूल का मुँह नहीं देखा। ठीक समय पर घर में भोजन कर लेता और स्कूल के स्थान में पब्लिक लाइब्रेरी जाकर रेनाल्ड्स के उपन्यास पढ़ता रहता।

चौथे दिन दूसरा घंटा इतिहास का था। अध्यापक ने हाजिरी लेते हुए गोपालराव का नाम पुकारा।

गोपाल बोला—"उपस्थित सर !"

अध्यापक ने गरदन उठाकर देखा। गोपाल हाजिरी बोल रहा था।

"तीन दिन से स्कूल को क्यों नहीं आया ?"

"कुछ काम था सर !"

"क्या काम था। छुट्टी के लिए प्रार्थना-पत्र क्यों नहीं भेजा ?"

"ऐसा काम नहीं था कि छुट्टी माँग सकता।"

"ऐसा कौन-सा राज्य-कार्य था जी ?"

"यदि आप कहें कि बता, तो मैं बताऊँगा सर !"

"बता भाई !"

"उस दिन मैंने कहा था कि मैंने रेनाल्ड्स के उपन्यास नहीं पढ़े। आपने विश्वास नहीं किया। आपने यह समझकर कि मैं झूठ बोलता

ह मुझे क्लास से बाहर निकाल दिया था। आपकी बात झूठ न होने पावे इसलिए मैं इन तीन दिनों में उसके सब उपन्यास पढ़ आया हूँ।"

अध्यापक अवाक् रह गये। तब गोपाल ने ही आगे बात चलाई।

वह बोला—"रेनाल्ड्स मुझे पसन्द नहीं आया। बहुत नीचे दरजे का लेखक है। उसका स्वभाव सड़े हुए प्याज को चन्दन कहने का है।"

अध्यापक ने गोपाल को अपनी मेज के पास बुलाया और उसका हाथ पकड़कर बोले, "I am sorry my boy. I have been a great fool" (बेटा, मुझे खेद है, मैंने बड़ी बेवकूफी की)। उस दिन से गोपाल और इतिहास के अध्यापक में गहरी दोस्ती हो गई।

घुसना और झगड़ा करना ये बातें गोपाल में बहुत कम थीं। स्कूल की प्रतियोगिताओं में विजयी होकर विद्यार्थियों में वीर कहलाने की परवाह वह नहीं करता था। उसके लिए तो बस इतना काफी था कि पढ़ने को खूब पुस्तकें हों और लिखने को यथेष्ट कागज और स्याही हो।

गोपाल के लिखे हुये निबन्ध अनेक बार अंग्रेजी और कन्नड के अध्यापक स्कूल में पढ़कर सब विद्यार्थियों को सुनाया करते थे। उनमें से कुछ स्कूल की पत्रिका में भी प्रकाशित हुए थे। उसके अध्यापक उसकी प्रशंसा करते हुए कहा करते थे कि उसके लेखन की शैली तो कालेज के विद्यार्थियों के लिए भी गौरव का विषय हो सकती है।

ग्रन्थों को पढ़ने के शौक के साथ-ही-साथ इसे लिखने का भी शौक था। आत्मानन्द के लिए ही वह कुछ कथायें और निबन्ध लिखा करता था। उसमें उनको प्रकाशन के लिए भेजने का आत्म-विश्वास नहीं था। वह चाहता था कि उसके लिखने की बात घर में किसी को मालूम न हो।

लक्ष्मण को यह मालूम था कि गोपाल को जब कभी फुरसत मिलती

है तो वह कुछ-न-कुछ लिखा करता है। वह क्या लिखता है यह पूछने के लिए ठीक अवसर लक्ष्मण को नहीं मिला था।

एक दिन लक्ष्मण गोपाल के कमरे में ठीक उसी समय पहुँचा जब वह अपनी कहानी समाप्त कर रहा था। लक्ष्मण को आता देखकर गोपाल ने अपनी कापी ढककर छिपा दी।

"गोपी, जल्दी से ढककर क्या रख रहा है ?"

"लच्छू भैया, कुछ नहीं।"

"निकाल, निकाल, देखें क्या है ?"

"लच्छू भैया, मैं तेरे बराबर नहीं पहुँचा हूँ।"

"दिखा भैया, मैं किसी से कहूँगा नहीं।"

"सच ··· ··· ··· ··· ··· ।"

"सच बात है। किसी से कभी नहीं कहूँगा।"

"एक कहानी लिख रहा था। तुच्छ-सा चीज है इसलिए तुझसे कहा नहीं।"

"पढ़कर सुनायेगा ?"

"तू सुने भी।"

"बड़ी खुशी से सुनूँगा।"

कहानी एक शिल्पी के जीवन के सम्बन्ध में थी। शिल्पी समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की मूर्तियाँ बनाकर बहुत प्रसिद्धि प्राप्त करता है। वह कला से पर्याप्त धन कमा कर धनी का जीवन बिताता हुआ सुख पूर्वक रहता है। किन्तु उसको एक बात की इच्छा है। वह चाहता है कि मैं गरीबों का चित्रण करके एक सुन्दर मूर्ति बनाऊँ। वह बहुत बार प्रयत्न करता है किन्तु सफल नहीं होता। जो मूर्ति भी वह बनाये उसके मुँह पर सुख-सम्पत्ति की ही झलक रहती है। कलाविद ऊबकर प्रयत्न छोड़ देता है। इसके बाद कुछ वर्ष बीत जाते हैं—कलाकार की एक-मात्र सन्तान उसकी पुत्री मोटर की टक्कर

लगकर मर जाती है—पत्नी भी पुत्री के शोक में अपने प्राण दे देती है—कलाकार के लिए सारा संसार शून्य हो जाता है। तब वह अपनी सारी सम्पत्ति दान करके पागल की तरह घूमने लगता है। भोजन न मिलने से दुबला हो जाता है। सर्दी और वर्षा की परवा न करके धर्मशालाओं के बरामदे में सो जाता और वहाँ के भिखारियों से मित्रता कर लेता है। अब उसके शरीर में नया रक्त बहने लगता है। उसके हाथ में सिर्फ एक कोयले का टुकड़ा आना चाहिए और वह गली की दीवारों के ऊपर चित्र खींचने लगता है। जो टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें वह खींचता है उनसे एक सुन्दर चित्र बन जाता है। वह तालाब से चिकनी मिट्टी लाकर मूर्तियाँ बनाकर गली में जो भी दिखाई देता है उसीको उदारता से उन मूर्तियों का दान करना शुरू कर देता है। उसके चित्रों और मूर्तियों का सौन्दर्य अद्भुत है। उनका सौन्दर्य स्त्री और पुरुषों के शरीर के बाह्य सौन्दर्य पर अवलम्बित नहीं है बल्कि वह उनके अन्तरंग को प्रकट करता है। पैसे के लिए हाथ पसारे हुए भिखारी का चित्र, माँ को पेट-भर खाने को नहीं मिला, फिर स्तनों में दूध कहाँ से आवे। बच्चे की भूख नहीं मिटती, रोता रहता है अपने सिर पर लकड़ियों का गट्ठा धरे एक लकड़हारे का चित्र, जो स्वयं भी सूखकर लकड़ी हो गया है—इसी ढंग के उसके सब चित्र होते हैं। चित्र बना-बनाकर वह उस बस्ती के लड़कों का दोस्त हो जाता है। जहाँ कहीं वह जाता है, उसके पीछे भीड़ लग जाती है। एक दिन पगला भागकर कहीं चला जाता है। सब लड़कों के मुखों पर उदासी छा जाती है। लड़कों ने उसके बाद उसको नहीं देखा। किसी ने भी नहीं देखा। अन्तिम दर्शन म्युनिसिपलिटी के स्वास्थ्य-विभाग वालों को हुआ।

कुछ देर तक लक्ष्मण के मुँह से एक बात भी नहीं निकली। गोपाल कौतूहल से प्रतीक्षा कर रहा था कि लक्ष्मण क्या कहता है।

"इसीको पढ़ने में तू संकोच करता था !"

"तुझे पसन्द आई लक्ष्मण !"

"मुझीको क्यों भैया, पढ़ने वाले हरेक को ही पसन्द आयगी। गोपी भैया, तेरे इस छोटे-से सिर में कैसे उदात्त विचार भरे पड़े हैं ? देख, मैं यही सोच रहा हूँ, तेरा साधन स्याही-कागज़ है और मेरा साधन सा रे ग म प ध नि स है।"

"लच्छू भैया, कहाँ तू और कहाँ मैं ? तू बहुत आगे पहुँच गया है—और मैं तो अभी आरम्भ ही कर रहा हूँ।"

"देख, सारा जीवन ही उतना है। एक 'अ' कार में समा जाता है। तत्त्ववेत्ता उसे ओंकार कहते हैं। सामान्य जन उसे ही वर्णमाला का प्रथम वर्ण कहते हैं। हम सबको उसीका अर्थ आ जाय तो वह पर्याप्त नहीं है क्या ? लिख, गोपी लिखना बन्द मत कर। कोई मना करे तो उससे निरुत्साहित मत हो। जो कुछ लिखे वह मुझे पढ़कर सुना-सुनकर मुझे आनन्द दे। मैं पण्डित नहीं, ज्ञानी नहीं, अधिक पढ़ा-लिखा नहीं, तुझको मुझसे कोई मतलब भी नहीं—पर मुझको है। तेरा लिखा सुनने से मेरे हृदय को खुशी होती है। जबकि सब लोग सदा छोटी बातों को ही सोचते रहते हैं तो कोई बड़े विचारों को उठाये तो ऐसा होता है जैसे अंधेरे में जुगनू की चमक हो।"

"लच्छू भैया, इससे भी अधिक सौभाग्य और क्या हो सकता है ?"

इस तरह से गोपाली ने अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

उस दिन से गोपाली की लेखनी में नया जोश आ गया। उसका मन उपजाऊ भूमि के समान था। अब ऐसा हुआ मानो उस पर खूब वर्षा पड़ी हो।

पन्द्रह

रामू एल-एल. बी. परीक्षा को पूरा करके आने के बाद अब आगे क्या करे यह प्रश्न उठा। सुन्दरराव ने कहा कि अपनी स्वतन्त्र वकालत आरम्भ करने से पहले किसी पुराने वकील के नीचे रहकर चार दिन काम करे तो काम अच्छी तरह सीख जायेगा। रामू की सम्मति थी कि मालूम नहीं वकालत कैसी चले, इसलिए वकालत के धन्धे के लाटरी के जीवन की अपेक्षा कोई नौकरी मिल जाय तो अच्छा है।

रावसाहब ने स्पष्ट कह दिया था कि मैं द्वार-द्वार पर जाकर 'मेरे लड़के को नौकरी दे दो' इस तरह भीख नहीं माँग सकता। अन्त में सुन्दरराव की सम्मति के अनुसार ही फैसला किया गया। रामू चेन्नपट्टण के मल्लिकार्जुनय्या के आफिस में काम करे, यह प्रबंध कर दिया गया।

मल्लिकार्जुनय्या बड़े पुराने वकील थे। उनको अपने पेशे का बड़ा अनुभव था। उनके पास फौजदारी और दीवानी दोनों तरह के मुकदमे आते थे। इसलिए सुन्दरराव ने सोचा कि उसके पास रहने से रामू काम बहुत जल्दी और अच्छी तरह सीख जायगा।

रामू सवेरे घर से चलता। पहले मल्लिकार्जुनय्या के दफ्तर में जाता, फिर कचहरी का काम समाप्त करके जब वह घर लौटता तो शाम हो जाती थी। उसके बाद फिर रात में दफ्तर जाना पड़ता। किसी-किसी दिन रोटी मिलना भी मुश्किल हो जाता। कभी-कभी वह होटल में ही भोजन करके कचहरी चला जाता।

रामू क आने से मल्लिकार्जुनय्या को भी आराम हो गया। वे धीरे-धीरे अपना काम उसके ऊपर डालकर अपने घर चले जाने लगे। प्रतिपक्षी का वकील रामू की धज्जियाँ उड़ाता रहे तो भी वे घर से नहीं निकलते थे। रामू को अलग स्वतन्त्र दफ्तर की सब सुविधायें प्राप्त-सी थीं। किन्तु वेतन शून्य ही था। मुवक्किल लोग दया करके चाय-पानी के लिए कभी-कभी जो एक-दो रुपये दे देते उसीसे सन्तुष्ट रहना पड़ता था।

रामू मन में बड़ा दुखी रहता था कि मेहनत मैं करता हूँ और आमदनी मल्लिकार्जुनय्या को होती है। उसने अपना असन्तोष प्रकट भी किया किन्तु मल्लिकार्जुनय्या चुप रहे। यह देखकर उसको बड़ा क्रोध आता था। मल्लिकार्जुनय्या सब-कुछ देख-भालकर भी चश्म-पोशी कर जाते।

रामू दफ्तर का गुस्सा घर वालों पर उतारता। घर आते ही वह एकदम 'धूमकेतु' बन जाता। जब तक दूसरों को मालूम हो कि रामू को क्रोध आया है, तब तक उसका क्रोध चोटी तक पहुँच जाता था। रावसाहब ने कई बार बेटे को समझाया भी, पर कोई फल न हुआ।

वे कहते, "हमेशा इस तरह करने से कैसे काम चलेगा रामू? शान्ति सीख भैया! यह गुस्सा कम कर! 'सहन करने वाला दीर्घायु होता है', इस कहावत को हमेशा याद रख।"

किन्तु उस पर कोई असर न होता।

अवसर मिलने पर सावित्रम्मा भी वही बात कहतीं। वे उसे चेतावनी देती रहतीं; "रामू, अक्का (बड़ी बहन=मीनाक्षम्मा) की हालत तुझे मालूम नहीं क्या? जरा कोलाहल होने पर उनकी छाती धकधक करने लगती है। इस बात का खयाल रख! डाक्टर कहते हैं कि उसमें जान की जोखिम है।"

"रामू उनकी बात मानकर पल-भर के लिए शान्त हो जाता, और

अगले ही क्षण किसी जरा-सी बात पर, या बिना कारण के ही ज्वाला-मुखी होकर आग उगलने लगता।

मीनाक्षम्मा दिन-पर-दिन क्षीण होती जा रही थी। डाक्टरों ने कहा कि स्थान और जलवायु बदले बिना फायदा होना कठिन है। मीनाक्षम्मा को भी अपनी बीमारी मालूम हो गई थी। तब उन्होंने बहुत दिनों से छोड़े हुए 'ललिता सहस्रनाम', 'अन्नपूर्णा-अष्टोत्तर' आदि का पाठ तथा कुंकुमार्चन (मन्दिरों में जाकर कुंकुम चढ़ाना) आदि का आरम्भ कर दिया।

रावसाहब बोले, "मीना, इन सबसे तुम्हारे दुर्बल शरीर पर जोर पड़ता है। इसलिए कुछ दिनों के लिए इन्हें छोड़ दो।"

किन्तु रावसाहब की बातों पर मीनाक्षम्मा कान ही नहीं देती थी।

उसी वर्ष पद्मा और जया दोनों ससुराल में आकर रहने लगीं। मीनाक्षम्मा के मुख पर चार दिन के लिए रौनक आ गई।

वे कहा करतीं; "मैं अपने लड़कों को बहुओं के साथ सुखपूर्वक रहते देखना चाहती थी। परमात्मा ने मेरी यह अभिलाषा पूरी कर दी।"

डाक्टर जलवायु बदलने पर बहुत जोर दे रहे थे।

मीनाक्षम्मा सोचकर बोलीं, "अच्छा ! जलवायु बदलनी ही है तो मैं चार दिन के लिए गाँव हो आती हूँ। अपनी बहुओं को अपना—नहीं—उनका गाँव दिखला लाती हूँ।"

रावसाहब ने गाँव को चिट्ठी लिख दी। सास गौरम्मा के मरने के बाद धनिष्ठा पंचक नक्षत्र होने के कारण पाँच महीने तक गाँव के घर में ताला पड़ा रहा था। पाँच महीने पूरा होने के समय राव साहब सपरिवार बंगलौर आ गये थे। घर की चाबियों का गुच्छा शामभट्ट को सौंप आये थे। धनिष्ठा पंचक की अवधि समाप्त होने पर

भट्ट जी ने घर को धुलवाकर शुद्ध पुण्याह करवाया था। गाँव के डाकखाने के लिए एक उपयुक्त मकान की जरूरत थी। शामभट्ट ने रावसाहब की अनुमति लेकर गली की तरफ वाले दो कमरे दस रुपये मासिक भाड़े पर डाकखाने वालों को दे दिये थे। बाकी मकान उनके कब्जे में था। भट्ट जी और उनके घर वाले वहीं आकर सोते और बैठते थे।

रावसाहब की चिट्ठी मिलते ही भट्ट जी ने घर को अच्छी तरह लिपवाकर सफेदी कराकर तैयार करा दिया था। मीनाक्षम्मा के गाँव में आने का समाचार सुनकर लोगों के आनन्द का वारापार न रहा। रंगेगौडा ने स्वयं खड़े होकर रावसाहब के घर की गली में पड़ी हुई झूठी पत्तलें आदि सब कूड़ा-करकट साफ करवाकर पानी छिड़कवाकर, रावसाहब के घर के आगे केले के खम्भे लगवाकर, आम के पत्तों की बन्दनवार बँधवाकर, भट्ट जी के घर वालों से कहकर घर के आगे सुन्दर चित्रित रंगवल्ली बनवाकर मीनाक्षम्मा के स्वागत की तैयारी की।

हरिजन मरिगौडा भी चुप नहीं रहा। उसने ग्राम के द्वार पर केले के खम्भे और आम के पत्तों की बन्दनवार बँधवाकर चार मील से तुरही बजाकर अगवानी का प्रबंध किया। उससे किसी ने पूछा, "तुरही से स्वागत तो सिर्फ तहसीलदार आदि बड़े अफसरों के लिए होता है ना ?" तो उसने उत्तर दिया, "हमारी माता जी अफसरों की अफसर हैं महाराज! हमारी लक्ष्मी हैं। उनसे बड़ा हमारे लिए कौन है ?"

मीनाक्षम्मा अपनी दोनों बहुओं को साथ लेकर चलीं। यह प्रश्न उठा कि उनके साथ कौन जायेगा। अक्का (बड़ी बहन) के साथ जाने के लिए सावित्रम्मा तैयार थीं। रावसाहब ने कहा कि इस समय तो लक्ष्मण ही जावे, यहाँ का काम देख-भाल कर चार दिन बाद शामण्णा

चले जायँ। खीर पकाकर सावित्रम्मा ने अक्का को परोस दी।

जब मीनाक्षम्मा भोजन कर रही थीं तो सावित्रम्मा फूट-फूटकर रोते हुए बोलीं, "अक्का, जल्दी लौटकर आना। तुम्हारे बिना मैं ज्यादह दिन नहीं रह सकती।"

भोजन करके जब मीनाक्षम्मा हाथ धो रही थीं, तभी बस दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। सामान ऊपर रखवाकर लक्ष्मण पद्मा और जया के साथ बस पर बैठ गया। मीनाक्षम्मा भीतर जाकर रावसाहब के दोनों चरण छूकर नमस्कार करके आईं।

रावसाहब बोले, "मीना अपने स्वास्थ्य की देख-भाल अच्छी तरह करना। मैं भी दो-चार दिन में आ जाऊँगा।"

सावित्रम्मा ने अक्का के माथे पर तिलक लगाकर फल और ताम्बूल दिया। फिर मीनाक्षम्मा के दोनों पैर छूकर नमस्कार किया। शान्ता और वेंकटेश ने भी नमस्कार किया। मीनाक्षम्मा बेटी और छोटी बहन के माथे पर तिलक लगाकर "मैं जाकर आती हूँ" यह कहकर बस में आकर बैठ गई।

जब गाँव तीन-चार मील रह गया तो तुरही का शब्द सुनाई दिया।

पद्मा ने पूछा कि यह काहे का शब्द है तो मीनाक्षम्मा ने उत्तर दिया, "मालूम होता है कि कोई सरकारी अफसर आ रहे हैं। उनके स्वागत के लिए तुरही बज रही है।"

बस गाँव के द्वार पर आकर खड़ी हो गई।[1] वहाँ जमा हुई भीड़ को देखकर मीनाक्षम्मा को बड़ा अचरज हुआ।

उनको पहचानते ही मरिगुड्डा ने पुकारा, "माई जी देखो, मैं पैरों पड़ता हूँ।"

---

१. मैसूर राज्य में प्रायः प्रत्येक गाँव के आगे अलंकारार्थ दो खम्भों के रूप में एक प्रवेश-द्वार होता है।

उसके सब घर वालों ने भी साष्टांग प्रणाम किया।

"अम्मा जी, कैसी हो ?

"मरिया, अच्छी हूँ। तुम सब तो अच्छी तरह हो।"

"हाँ, माई जी, थारी दया है।"

अब मीनाक्षम्मा को मालूम हो गया कि यह सब सम्मान, स्वागत तुरही, पत्रों के तोरण मेरे लिए ही हैं। वहाँ से बस रावसाहब के घर के सामने ही आकर खड़ी हो गई। वहाँ बड़ी भीड़ जमा थी। रंगेगौडा और उसके परिवार ने मीनाक्षम्मा को साष्टांग प्रणाम किया। भट्टजी ने घर के द्वार पर पटरा डालकर एक लोटे में पानी ला रक्खा था। भट्ट जी की बेटी और बहू ने मीनाक्षम्मा के पैर धोकर आरती उतारी।

इसके बाद सब भीतर गये। वहाँ सबके लिए काफी, उपिट्टु, (नमकीन हलवा), केले और डाब (कच्चे नारियल का पानी) का इन्तजाम था।

जल-पान करते हुए मीनाक्षम्मा बोलीं, "क्या, भट्ट जी, बड़ी धूम-धाम कर दी।"

"माता जी, मैं क्या करूँ। सब दोष तुम्हारा है। तुम गाँव वालों के हृदय-कमल में रहने वाली लक्ष्मी हो।"

"भट्ट जी, मैंने पूर्व जन्म में बड़े पुण्य किये हैं। मैं भाग्यशालिनी हूँ।"

"इसमें क्या सन्देह है ?"

इस प्रकार भट्ट जी ने उनकी बात का समर्थन किया।

गाँव की चाल-ढाल दोनों बहुओं को, विशेषतः जया को, बहुत ही अजीब लगी। वह नगर में ही जन्मी और नगर में ही बड़ी हुई थी। होसहल्ली के भोले-भाले निवासी मीनाक्षम्मा से माता की तरह प्रेम करते थे। यह सब देखकर जया को बड़ा अचरज हुआ। गाँव के

जीवन में अलग-अलग कुटुम्ब नहीं होते, अलग-अलग घर नहीं होते। उसने देखा कि गाँव में सब लोग एक कुटुम्ब वालों की तरह मिल-जुल कर रहते हैं। उनका जीवन परस्पर ओत-प्रोत है। ब्राह्मण शामभट्ट के बिना किसान रंगेगौडा अपनी फसल नहीं बो सकता, और रंगेगौडा के फसल बोये बिना शामभट्ट को अन्न का दाना नहीं मिल सकता। किन्तु यदि इस परस्पर प्रेम में कुछ भी गड़बड़ हो जाय तो गाँव रण-भूमि बन जाता है।

जया के मन पर गाँव ने जितना प्रभाव किया, पद्मा के मन पर उतना नहीं किया। पद्मा को मलनाड (मैसूर राज्य के पश्चिमोत्तर के पहाड़ी प्रदेश) के गाँवों का काफी परिचय था। उसको मलनाड की आदि और अन्त रहित वर्षा, जोंकों का उपद्रव, काफी के पौधों पर कीड़ों का हमला आदि चिन्ताओं का काफी अनुभव था। वह यह भी जानती थी कि रुपये-पैसे के मामले में गाँव वाले कितने ईमानदार और न्यायप्रिय होते हैं।

रंगेगौडा के छोटे भाई करिगौडा ने मीनाक्षम्मा को अपने यहाँ आतिथ्य के लिए बुलाया। उसने कहा, "माता जी क्या रोज-रोज गाँव में आती हैं? हमारे सौभाग्य से न मालूम कितने दिनों में आई हैं। उनकी खातिरदारी हमारे लिए बड़े भाग्य की बात है।"

उसने गन्ने का रस, गरम-गरम गुड़, गरम गुड़ की चाशनी में उबाला हुआ कसा हुआ खोपरा इन ग्रामोचित वस्तुओं द्वारा उनका आतिथ्य किया। सबने इलायची और नींबू का रस मिला हुआ गन्ने का रस चार-चार पाँच- पाँच गिलास पिया।

मीनाक्षम्मा बहुओं से बोली: "इस समय उनको हमारे साथ होना चाहिये था। तुम्हारे हाथ में गन्ने देकर मुँह से छीलकर खाने को कहते।"

मीनाक्षम्मा ने बहुओं को अपनी जमीन और सब बाग दिखलाये

और जमीन जोतने वाले किसानों को बुलाकर उनसे बोलीं—"बैला, केम्पा, रंगप्पा, मरिया ये ही तुम्हारी मालकिन हैं। जैसे तुम सावित्रम्मा की इज्जत करते थे वैसे ही पद्मा और जया की भी करना।"

"थारी जैसी अग्या माई जी !"

रोज किसी-न-किसी के यहाँ आतिथ्य होता ही रहता था। यह गाँव-गवड़ी का आतिथ्य था। वे लोग लड्डू, पेड़े नहीं बनाते थे, रागी की रोटी, अरहर की कनकी का लड्डू, गरम ताजे गुड़ आदि में ही अपने प्रेम से लड्डू-पेड़े से भी अधिक माधुर्य ले आते थे। पद्मा मलनाड में पली थी, अतः वह सूखे प्रदेश में पैदा होने वाले रागी और ज्वार का स्वाद नहीं जानती थी और रागी से बने पदार्थों को नहीं छूती थी।

भट्ट जी की बेटी ने अपने हाथों से रागी की रोटी और केले की खीर तैयार करके जया और पद्मा को बुलाया। रोटी में खूब नारियल, हरी मिर्च, धनिये की पत्ती और मक्खन डालकर अच्छी तरह मिलाकर उसे सुस्वादु बना दिया था। जया ने बिना संकोच खूब उड़ाना प्रारम्भ कर दिया।

पद्मा ने खीर का स्वाद देखकर कहा, "मुझे नहीं चाहिये जी !"

"रोटी का स्वाद देखो पद्मा, बहुत बढ़िया है।"

पद्मा गरदन हिलाकर बोली, "मुझे रागी की चीजें पचती नहीं, अभ्यास नहीं है।"

भट्ट जी की बेटी यह सहन नहीं कर सकी और मजाक करती बोली, "हाँ माई जी, तुम लोग पैसे वाली हो। रोज लड्डू-पेड़े उड़ाने वाली हो। हम गरीब हैं। हमारे लिए इस सूखी रोटी में ही ३६ व्यंजनों का स्वाद है।"

पद्मा ने सास को बुलाकर उनसे शिकायत की और उनसे धिक्कार

सुनकर चुप हो रही।

मीनाक्षम्मा बहुओं से बोली—

"रागी, चावल, गेहूँ से मनुष्य की योग्यता नहीं पहचानी जाती। हीरे और लाल के कर्णफूल योग्यता का निर्णय नहीं करते। मनुष्य का मन अच्छा होना चाहिये। उसमें अन्तःकरण होना चाहिये। हमारे रंगप्पा, मरिगुड्डा और भट्ट जी की योग्यता क्या आँकी जा सकती है? ये लोग सोने-जैसे हैं और इनका मन भी सोने-जैसा है।"

लक्ष्मण के आने की खबर शीघ्र ही उसके गाँव के दोस्तों में फैल गई। उन लोगों को शामण्णा के द्वारा मालूम हो चुका था कि लक्ष्मण बंगलौर में एक प्रसिद्ध संगीताचार्य से संगीत सीख रहा है। शामण्णा ने उन लोगों से कहा था, "अब तो लक्ष्मण ध्रुपद गाता है जी!"

गर्ल-स्कूल के संगीताध्यापक, राम स्वामी अय्यंगार, वेंकट स्वामी, रंगदास सबने मन्दिर में इक्ट्ठे होकर सभा की। उन लोगों को एक गहन विषय पर निर्णय करना था।

गर्ल-स्कूल के अध्यापक ने संदेह प्रकट किया, "लक्ष्मणराव से कैसे प्रार्थना की जाय?"

पुलिओगरे रामस्वामी अय्यंगार ने उत्तर दिया, "कैसे प्रार्थना की जाय? इसमें क्या है? उनसे कहा जाय कि कल शनिवार को भजन में तुमको गाना होगा।"

"नहीं महाराज, पहले तो वे लड़के थे। अब बंगलौर में विद्या सीखकर आये हैं। हम गरीब गाँव के लोगों की बात का क्या मूल्य है?"

इन शब्दों में वेंकटेश स्वामी ने अपना सन्देह प्रकट किया। तब रंगदास बोले—"इस बात का डर बिल्कुल नहीं है। घमंड से लक्ष्मणराव का सिर फिरने वाला नहीं है। महाभारत-पाठ करने वाले

शामण्णा भी यहाँ होते तो अच्छा होता।"

तब संगीताध्यापक ने धीरज बँधाया, "हम प्रयत्न करें। हम उनके पुराने मित्र हैं। हम उनसे प्रार्थना करेंगे तो मैं नहीं समझता हूँ कि वे 'नाहीं' करेंगे। बाकी सब ईश्वर के भरोसे छोड़ देना चाहिये।"

जब बड़े भजन का प्रबन्ध किया गया है तब उसके लिये प्रसाद भी बड़ा होना चाहिये। इसलिये उन लोगों ने तहसीलदार साहब के सामने धरना दे दिया। उनके दफ्तर से प्रसाद की व्यवस्था हो गई। अध्यापक, दास आदि सबने डरते-डरते लक्ष्मणराव से विनती की। उसने फौरन स्वीकार कर लिया, जिससे वे सब अत्यानन्दित हुए।

यह सोचकर कि मन्दिर का भजन का कमरा काफी नहीं है उन्होंने उसके सामने एक बड़ा पण्डाल खड़ा कर दिया। सुपारी और नारियल के पेड़ों का तो कुछ अकाल नहीं था। एक सुन्दर पण्डाल बनाकर, सब खम्भों को जंगली फूलों से अलंकृत करके कन्या पाठशाला से चार बेन्चें लाकर उनसे गाने वालों के लिए मंच बनाकर, पैट्रोमैक्स लैम्प मँगाकर खूब शानदार प्रबन्ध किया। साजिन्दे हमेशा की तरह रंगस्वामी अय्यंगार और वेंकट स्वामी थे।

आज सारा गाँव-का-गाँव आ जुड़ा था। मीनाक्षम्मा भी अपनी बहुओं के साथ आई थीं। इस विषय में माँ-बेटे में कुछ कहा-सुनी भी हो गई।

"माँ क्या तू भी आयेगी ?"

"क्यों, क्या मुझे नहीं आना चाहिये ?"

"तू इतनी देर नहीं बैठी रह सकती। पहले तेरी पीठ में दर्द है। मुझे डर है कि थकान के कारण तुम्हें ज्वर आ जायगा।"

"सारा गाँव-का-गाँव तेरा गाना सुन सकता है, लच्चू भैया और केवल मैं ही नहीं सुन सकती।"

"ऐसी बात नहीं है, माँ ! तुझे चाहिये तो मैं दिन-भर गाता रहूँगा। तेरे स्वास्थ्य की हालत देखकर मैंने कहा कि वहाँ जाने से तेरे शरीर पर बोझ पड़ेगा। क्या मैं चाहता हूँ कि तू वहाँ न आये ?"

"सभा में तेरा गाना मैंने नहीं सुना। शान्ता के विवाह में तेरा गाना हुआ था, पर तब मैं दौड़-धूप में ही रही। बहुत कमजोरी मालूम हुई तो मैं बीच में ही उठकर घर चली जाऊँगी।"

"जैसी तेरी इच्छा, माँ !"

यह कहकर लक्ष्मण को माँ के आगे हार माननी पड़ी।

संगीत-सभा प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ 'वातापि गणपतिं भजे' से हुआ। रामस्वामी का हाथ थकने लगा। वेंकटशामी के ताल में गलतियाँ थीं।

लक्ष्मण ने अपने मित्रों की गलतियाँ दे कर धीरज बँधाते हुए कहा। "धीरे से मेरे पीछे-पीछे चलो !"

लक्ष्मण गाता चला गया और रामस्वामी वायोलिन नीचे रखकर स्वयं भी चुपचाप सुनने लगा। वेंकटशामी सिर्फ 'ठेका' देता हुआ किसी-न-किसी तरह लक्ष्मण के पीछे चलने का यत्न करने लगा। जब चार कीर्तन समाप्त हुए तब तहसील के घण्टे ने ग्यारह बजाये। लक्ष्मण ने एक दो 'देवर' नाम गाकर समाप्ति-सूचक मंगल-आरती गाई। संगीत-सभा समाप्त होने पर उठकर उसने पहले माता को प्रणाम किया। मीनाक्षम्मा के मुँह से शब्द नहीं निकला। बेटे के सिर पर हाथ रखकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। सब लोगों ने तरह-तरह से लक्ष्मणराव की प्रशंसा की। आँसू पोंछते-पोंछते तहसीलदार साहब का रूमाल गीला हो गया था। उन्होंने ही उठकर खड़े होकर सभा को सम्बोधित करके चार शब्द कहकर यह बतलाया कि लक्ष्मण-राव का भविष्य कैसा उज्ज्वल है।

ये सब प्रशंसा की बातें सुनते-सुनते लक्ष्मणराव ऊब गया। उसका

सारा ध्यान चेन्नप्पा पर केन्द्रित था। वह सोच रहा था कि कितना अच्छा होता कि आज वे मेरा गाना सुनते। उसको पिछली सब बातें याद आ रही थीं। वह यही भजन-मन्दिर है, मैंने गाया था, चेन्नप्पा ने गाया था, उन्होंने जो-जो बातें कही थीं, वे सब उसके कानों में गूँज रही थीं। लक्ष्मण लोगों की सब स्तुति को मन-ही-मन गुरुदेव को अर्पण कर रहा था।

लक्ष्मण के संगीत को सबने पसन्द किया, सबने उसकी प्रशंसा की, किन्तु स्वयं उसीको अपना संगीत पसन्द नहीं आया।

वह सोच रहा था—'नहीं, यह संगीत नहीं है। यह तो 'सरिगम पधनिस' का खेल-मात्र है। मीठे गले का सम्मोहनास्त्र है। एक दिन सच्चा संगीत गाना चाहिये।'

उसको उस समय मन की उस अस्त-व्यस्त स्थिति में गोपाल की लिखी कहानी याद आई, 'जब जनता की इच्छा समाप्त हो जाती है तो कलाविद् की इच्छा प्रारम्भ होती है। जो बात जनता के लिए हितकर होती है वही कलाविद् को अतृप्ति प्रतीत होती है। जनता को जिस बात में तृप्ति मालूम पड़ती है उसीमें कलाविद् को अतृप्ति प्रतीत होती है।' वह सोचने लगा कि कथा में ये बातें मुझे ही लक्ष्य करके लिखी गई हैं।

जब मीनाक्षम्मा ने उससे कहा, "चलो बेटा, घर चलो!"

तभी उसको होश हुआ। हँसकर वह बोला, "अच्छा माँ!"

सोलह

अगले दिन शामण्णा गाँव में बस से आकर उतरे। जब उन्हें मालूम हुआ कि पिछली रात को लक्ष्मण का गाना हुआ था तो उनको बड़ा दुःख हुआ कि मैं ऐसे मौके से चूक गया।

"क्या शामण्णा जी आ गये ? वहाँ घर में ......"

"रावसाहब बोले, 'परवाह नहीं, कुछ दिन के लिये गाँव हो आओ।' मेरे मन से भी नहीं रहा गया। और मैं आ गया।"

शामण्णा क्या आये, मानो लक्ष्मण की दाहिनी भुजा आ गई। मीनाक्षम्मा का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ता जा रहा था। बीमारी ने रोज-रोज एक नया रूप धारण करना आरम्भ किया। अपनी स्थिति का परिणाम मीनाक्षम्मा को भी मालूम हो गया। उन्होंने मन में धैर्य धारण किया। बाहर वे किसी तरह की भी पीड़ा प्रकट नहीं करती थीं।

अब उन्होंने अपनी बहुओं को उपदेश देने की तरफ ध्यान देना शुरू किया। घर में किस-किससे कैसा-कैसा बर्ताव करना चाहिये, घर में आने वालों से कैसा बर्ताव करना चाहिये, सब सम्बन्धियों के गुण-दोषों का परिचय, ये सब बातें उनको बतलाती रहीं। पद्मा को बुलाकर अपने पास बिठलाकर कहतीं—

"पद्मा, रामू की देख-भाल करना कुछ जिम्मेदारी का काम है। उसका मन अच्छा है, पर उसकी आदत बिना सोचे-विचारे काम कर डालने की है। उसे क्रोध बड़ी जल्दी आ जाता है। तुझे सब-कुछ सहन करके चलना पड़ेगा। आगे तू ही घर की मालकिन होगी, और

रामू मालिक होगा। तुझे ऐसा बर्तना चाहिये कि बड़ों के गौरव क धक्का न लगे।"

"सास जी, ऐसा ही होगा।"

'एक और बात है। मैंने यह बात कही है, इसे तू अन्यथा न समझना। जैसे गोपाली है, वैसे ही तुमको और रामू को लक्ष्मण भी है। उन दोनों की देख-भाल करने की जिम्मेदारी तुम दोनों पर है। जया और तुम दोनों हमेशा प्रेम से रहना। तुम दोनों में कुछ मन-मुटाव हो जाय तो पतियों से चुगली न करना, आपस म ही सुलझा लेना।"

यही बात मीनाक्षम्मा ने जया से भी कही।

"संगीत के सिवाय दुनिया की और कोई बात लक्ष्मण नहीं जानता। उसका स्वभाव हमेशा बच्चे-जैसा है। मन में कुछ दुःख हो तो उसका स्वभाव उस दुःख को औरों की तरह प्रकट करने का नहीं है। वह मन-ही-मन दुखी होता रहता है। तू होशियार है। सब-कुछ समझती है। उसकी देख-भाल करने का भार तुझ पर है।"

"सास जी, आप आज ऐसी बातें क्यों कर रही हैं? हमको सलाह देकर रास्ता दिखलाने वाली आप जब मौजूद हैं, तो हमको सोच किस बात का, कमी किसकी?"

मीनाक्षम्मा ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"बेटी, मेरे जीवन का तो अब अन्त निकट ही है।"

मीनाक्षम्मा के मन में कोई विचार उठा। आज शुक्रवार है—उन्होंने सोचा कि आज मन्दिर में कुंकुमार्चन करके (देवता पर कुंकुम चढ़ाकर) चार सुहागिनों को फूल और पान दूँ।[1] शामण्णा को

१. दक्षिण में स्त्रियाँ कोई मनौती मनाकर मन्दिर में कुंकुम चढ़ाती हैं, उसे कुंकुमार्चन कहते हैं, तथा सुहागिनों को फूल और पान-बीड़ा भेंट करती हैं, जिसे फूल-पान व फूल-बीड़ा की रस्म कहते हैं।

बुलाकर उन्होंने कहा कि उनसे बंगलौर कहला भेजो कि एक दिन के वास्ते यहाँ हो जाएँ।

कुंकुमार्चन करते और फूल-पान देते-देते तीन बज गये। उसके बाद वे भोजन करके सो गईं। शाम को बस के आने के समय ज्वर से उनका शरीर जल रहा था।

रावसाहब घबराते हुए फौरन गाँव आ गये।

सवेरे से जो-कुछ हुआ था उसे सुनकर उन्होंने शामण्णा से जवाब-तलब किया, "जान-बूझकर भी शामण्णा तुमने कुंकुमार्चन और फूल-पान कैसे करने दिया ?"

"मैंने ही कहा था जी, शाम्मणा पर क्रोध न कीजिये। मेरी कुछ अन्तिम इच्छायें थीं। उनमें से एक यह थी।"

"मीना, ऐसी बात मुँह से मत निकालो। इस तरह दिल छोटा मत करो। भय मत करो!"

"यह भय नहीं पूर्ण निर्भयता है। मैं यही डरती थी कि ऐसा न हो कि मैं आपका अन्तिम दर्शन प्राप्त न कर सकूँ। मैं अब जाकर आती हूँ।"

"मीना, कहाँ जाकर ?"

रावसाहब के शब्द भी मीनाक्षम्मा के कानों में नहीं पड़े। उन्होंने चारों ओर खड़े बेटे और बहुओं को पास बुलाकर प्रेम से सब पर हाथ फेरा।

"मैंने रामू को नहीं देखा। सावित्रम्मा से कह देना। वेंकटेश, शान्ता और गोपी सबसे कह देना।" यह लड़के से कहकर धीरे से उठने का प्रयत्न किया।

लक्ष्मण ने पकड़कर उठाकर बैठाया।

वे पति से बोलीं, "जरा खड़े होगे जी ?"

रावसाहब उठकर खड़े हो गये। मीनाक्षम्मा ने एक बार और अपने चारों ओर दृष्टि डाली, तथा पति, बेटे, बहुओं और शामण्णा सबको आँख भरकर देखकर, पति के चरण छूकर उन पर सिर रख दिया।

वे फिर नहीं उठीं।

सत्रह

रावसाहब का जीवन ही बदल गया। एक तरह के पागलपन ने उनको आवृत कर लिया। रामायण पकड़कर बैठ जाते तो वैसे ही बैठे रह जाते। बगीचे में काम करने के लिए फावड़ा लेकर खड़े होते तो वैसे ही खड़े रह जाते। सन्ध्या-वन्दन के लिए बैठते तो वहाँ से उठते ही नहीं। सौ बार पूछने पर एक बार उत्तर देते। उनका उत्तर प्रायः असम्बद्ध ही होता।

रावसाहब की हालत देखकर दोनों मित्रों को बड़ा दुःख हुआ। उनको यह नहीं सूझता था कि क्या किया जाय। उन्होंने रावसाहब से कहा कि चार दिन के वास्ते बाहर घूम आयें तो दुःख कुछ भल जायगा, किन्तु रावसाहब ने स्पष्ट कह दिया कि मैं बंगलौर से हरगिज नहीं हिलूँगा। जब वे बाहर से घर लौटते तो पहले के अभ्यास के अनुसार 'मीना' कहकर पुकारते। सावित्रम्मा आकर सामने खड़ी हो जाती तो अपने से ही बातचीत करके सिर झुकाकर अपने कमरे के भीतर चले जाते।

मीनाक्षम्मा मुझे छोड़कर चली गईं, यह बात रावसाहब के मन में बैठती ही नहीं थी। सवेरे से लेकर साँझ तक मीनाक्षम्मा जो कुछ करती थीं, वह उनकी आँखों के सामने आता रहता था। अपने कमरे में बैठे-ही-बैठे घड़ी देखकर वे कहते रहते—"अब मीना तुलसी के चबूतरे की प्रदक्षिणा और नमस्कार करती होगी।"

"अब रामू आता होगा, इसलिए मीना उसके लिए जल-पान तैयार करती होगी।"

'अब मीना जया और पद्मा को घरेलू गाने सिखलाती हुई फूल गूँथ रही होगी ।'

और ये बातें सोचकर, मीना वहाँ होगी यह समझकर, तुलसी के पौधे के पास या रसोई में दौड़ जाते और वहाँ मीना को न पाते । तब निराश होकर अपने कमरे में लौट आते और दुःख के कारण अपने शरीर की सुध-बुध भूल जाते । वे बैठे या खड़े हों, मीनाक्षम्मा उनकी आँखों के सामने खड़ी हो जाती । उनकी मृदु मुस्कान, सहज गाम्भीर्य, उदात्त चाल-ढाल उनकी आँखों के सामने नाचने लगता । उनको सब बातें याद आतीं कि किस तरह मीनाक्षम्मा ने सावित्रम्मा को लाकर उनसे विवाह कराया—अपने कर्णफूल सावित्रम्मा को पहनाये—सावित्री को स्नान कराके, उसकी चोटी करके, अच्छी तरह शृंगार करके उसे मेरे पास भेजतीं—रामू के सब रोष और दोषों को चुपचाप सह लेतीं । घर के नौकर-चाकर, आश्रित सबके प्रति कैसी दया और सहानुभूति दिखलातीं । वे सोते-सोते घबराकर 'मीना', 'मीना' पुकारते हुए सारे घर में दौड़ने लगते । एक दिन चौखट से ठोकर खाकर गिर पड़े और उनका माथा फूट गया ।

रावसाहब की दशा घर में सबके लिए भारी चिन्ता का विषय बन गई ।

शामण्णा ने भीमराव से पूछा, "पतिव्रताओं की कहानियाँ सुनाते हैं । हमारे राव-जैसे पत्नीव्रत की कहानी क्यों नहीं सुनाते ?"

भीमराव ने उसके उत्तर में कहा, "मालूम होता है, उस जमाने में राव-जैसे पत्नीव्रती थे ही नहीं ।"

रावसाहब का मनोरोग बढ़ता ही गया । उनको मीनाक्षम्मा के नाम, जीवन, रूप के सिवाय और कोई बात ही अच्छी नहीं लगती थी । कोई मीनाक्षम्मा के विषय में बात करता हो तो कान लगाकर सुनने लगते और वह आदमी दूसरे विषय पर बातचीत करना शुरू

कर दे तो जैसे कछवा अपने खोल में घुसकर बैठ जाता है वैसे ही करते। घर की देख-भाल की पूरी जिम्मेवारी रामचन्द्र के ऊपर थी। हमेशा की तरह सब काम शामण्णा ही देखते-भालते थे। सिर्फ पैसे की जिम्मेदारी रामचन्द्र के ऊपर थी।

मीनाक्षम्मा के स्वर्गवास के बाद सावित्रम्मा सामान्यतः किसी बात की तरफ ध्यान नहीं देती थीं। पति की दशा इतनी खराब होने के बाद पति की सेवा और पूजा-पाठ के सिवाय और किसी बात की तरफ वह ध्यान नहीं देती थीं। पहले रसोई का सब काम वह स्वयं ही करती थीं। अब वह काम शान्ता, जया और पद्मा के ऊपर आ गया। वे बारी-बारी से एक-एक दिन पकाने का काम करती थीं।

रामचन्द्र के हाथ में अधिकार क्या आया, वही कहावत हुई कि 'मिणचंभट्ट की जान आफत में आ गई।'

दूध कम खरीदना प्रारम्भ कर दिया। रोज रात को लक्ष्मण और वेंकटेश दूध पिया करते थे। वह बन्द हो गया। नये मालिक की आज्ञा हुई कि शाक एक ही जून बनाया जाय। बिजली का खर्चा बहुत हो जाता है, इसलिए रात के दस बजे के बाद मेन स्विच आफ कर दिया जाता। रात को लहर आने पर लक्ष्मण पढ़ा करता था और गोपाल सामान्यतः लिखने का काम रात को ही किया करता था। अब उनको लालटैन रखकर उसकी सहायता से ही लिखने-पढ़ने का काम करना पड़ता था।

एक दिन रामचन्द्र की कृपा-दृष्टि वारान्न की भिक्षा के भोजन के लिए आने वाले गरीब विद्यार्थियों पर पड़ी। लड़के अपनी पंक्ति में भोजन के लिए बैठे थे। उस दिन पद्मा की भोजन की बारी थी। शान्ता और जया दोनों परोस रही थीं। रामचन्द्र सोचने लगा कि क्या मेरी पत्नी इन सब भिखारियों के लिए खाना पकाती है।

उनको इतना धीरज नहीं हुआ कि लड़कों का भोजन समाप्त हो

जाय, और वह फौरन बोल उठा—"कल से तुम सब यहाँ भोजन के लिए मत आना जी ! हमारे घर में सुविधा नहीं है।"

लड़के उठकर हाथ-मुँह धोकर बाहर चले गये। फिर राव साहब के घर के पास फटके तक नहीं। सावित्रम्मा को यह समाचार सुनकर बहुत दुःख हुआ।

बेटा जब आराम से पान चबा रहा था तब वे उसके पास आकर बोलीं, "रामू भैया, तूने यह क्या किया ?"

"मैंने क्या किया माँ ?"

"उन सब गरीब लड़कों को भगा दिया ?"

"घर में भिखमंगों की भीड बहुत हो गई थी। इससे हमारा पैसा भी खर्च हुआ और इन आवारा लड़कों को विद्या भी नहीं आई। मैंने इसलिए ऐसा कहा है कि वे कुछ मेहनत करके स्वावलम्बन सीखें। उनके भले के लिए ही मैंने ऐसा किया है।"

"भैया, इसमें खर्च क्या बढ़ गया ? जहाँ घर में दस आदमी भोजन करते हैं, वहाँ चार विद्यार्थी भी भोजन करने लगें तो उससे क्या नुकसान हो जायगा ? परमात्मा ने क्या कमी की है ? उनका घर अन्न-दान के लिए प्रसिद्ध है। तेरा यह काम अच्छा नहीं है।"

"ऐसा है तो तू ही घर की सब देख-भाल कर ! मालूम होता है कि शामण्णा और लक्ष्मण ने तेरे कान भरे हैं।"

यह कहकर चाबियों का गुच्छा उसने माँ के पास फेंक दिया।

सावित्रम्मा चाबियों का गुच्छा रामू की मेज पर रखकर बोलीं, "रामू यही पहली और यही अन्तिम बात है। अब से मैं तुझसे कुछ नहीं कहूँगी। भैया, मुझसे भूल हुई, क्षमा कर ! यों भी तू घर का मालिक है। जैसे तुझे अच्छा लगे वैसा कर !"

इसके बाद वे वहाँ नहीं ठहरीं और बाहर चली गईं। रामू ने माँ के ऊपर के क्रोध को पत्नी के ऊपर उतारा, और पद्मा को पकड़-

कर अच्छी तरह पीटकर जल्दी-जल्दी कपड़े पहनकर कचहरी को चला गया।

रामचन्द्र के मालिकपन की गरमी घर में सबको लगने लग गई। शामण्णा को एक पुराना तम्बूरा सस्ता मिल गया, इसलिए बीस रुपये देकर मोल ले आये। उसमें घोड़ा और तार नहीं थे। उसके लिए कुछ पैसा खर्च करके उसे तैयार करने लगे।

शामण्णा का यह नया काम देखकर वेंकटेश बोला, "यह क्या है शामण्णा जी? तम्बूरा लाकर रखा है। क्या कुमार व्यास का जीर्णोद्धार करोगे?"

"मैं अपना ही जीर्णोद्धार करूँगा, भैया मैं जानता हूँ कि इस नये राज में मुझे भी आज नहीं तो कल हुक्मनामा मिल ही जायगा।"

"ऐसा भी कहीं होता है? आपको········इतने दिनों तक आपने रावसाहब के घर के लिए खून-पसीना एक किया है।"

"वेंकटेश··· मैं ही अकेला नहीं। तू भी उस श्रेणी में है। तेरे साथ ही लक्ष्मण का भी यही हाल होगा। सब लोग अभी से जरा सावधान हो जाओ।"

"अच्छा ऐसा ही सही।"

"एक बात है। तू आगे के लिए क्या सोच रहा है?"

"मैं यह सोच रहा हूँ कि किसी बीमा-कम्पनी का एजेण्ट बन जाऊँगा। अभी तो मैंने सरकारी बीमा-कम्पनी को प्रार्थना-पत्र भेजा है। (प्राइवेट कम्पनियों की तरह बीमा करने वाला मैसूर सरकार का एक बीमा-विभाग है।) भीमराव और सुन्दरराव ने भी सहायता देने का वचन दिया है।"

"भैया, तू कुछ भी करे। अपने पैरों पर खड़ा होने की तैयारी कर। समय ऐसा ही आ रहा है।"

"ठीक है शामण्णा जी! मैं तो कुछ-न-कुछ कर ही लूँगा। मुझे

लक्ष्मण की ही चिन्ता है।"

"वह पैसा कमाने की ओर बिल्कुल ध्यान देता ही नहीं। नहीं तो संगीत सिखाने के लिए तीन-चार मोटे टच्यूशन अभी मिल सकते हैं। उसका ढंग ही दूसरा है। संगीत-समाज वाले प्रतिवर्ष संगीत-सभा के लिए बुलाते ही रहते हैं। किन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि मैं दक्षिण देश को जाकर वहाँ अपनी जय-भेरी बजाकर लौटे बिना समाज में नहीं गाऊँगा। अनन्ताचार्य से जितना सीख सकता था, सीख चुका। अब उसकी इच्छा है कि दक्षिण जाकर एक-दो वर्ष नायना पिल्ले के पास रह आऊँ। किन्तु पिता की दशा देखकर उसका मुँह बन्द हो गया है। वह भीतर-ही-भीतर दुखी होता रहता है।"

"बड़े भाई को धन-पिशाच ने पकड़ रखा है, और छोटे भाई को संगीत-पिशाच ने पकड़ रखा है। मालूम होता है कि हमारे घर में एक-एक आदमी को एक-एक पिशाच ने पकड़ रखा है।"

शामण्णा हँसते हुए बोले, "पकड़ने दो भैया, पकड़ने दो। पर पिशाच के पकड़े हुए एक-दूसरे को न पकड़ें; यही चाहिये।"

अठारह

रामचन्द्र मल्लिकार्जुनय्या के दफ्तर से ऊब गया। मुवक्किल लोग देखते थे कि मल्लिकार्जुनय्या कभी दफ्तर में आते ही नहीं और रामचन्द्र से ही सब काम कराते हैं। मुवक्किलों में कुछ वकीलों की दलाली का काम करते थे। उन्होंने रामचन्द्र को यों सिखलाना शुरू किया।

"हजूर, आप ही अपना दफ्तर खोल लीजिये ना। हम सब आप ही के दफ्तर में आ जाएँगे। मल्लिकार्जुनय्या के दफ्तर में क्या धरा है।"

उन लोगों का तमाशा मल्लिकार्जुनय्या के सामने नहीं चल सकता था। रामचन्द्र छोटा वकील है। उसको जैसा पढ़ायें वैसा ही पढ़ता है, जैसा वे लोग कहें, उसे सुनता है। ये लोग सोचते थे कि स्वतन्त्र वकालत का लालच दिखलाकर अपना घर भरेंगे। रामचन्द्र ने उनकी बातों में आकर अपना अलग दफ्तर खोल दिया और उस पर—

एच० एस० रामचन्द्र राव, एम० ए० एल-एल० बी
वकील हाइकोर्ट

यह साइन-बोर्ड लगा दिया। मल्लिकार्जुनय्या भीतर-ही-भीतर कुढ़ते थे कि मुझसे ही काम सीखकर मेरे ही मुवक्किलों को तोड़ लिया, किंतु ऊपर से शुभाकांक्षा प्रकट की। "रामचन्द्र राव, बड़ी खुशी हुई। परमात्मा तुम्हारी उन्नति करे। पेशे में नाम कमाओ!"

जो कुछ फीस मिलती थी उसमें से आधी दलालों के पेट में जाती थी, फिर भी पहले महीने में ही रामचन्द्र को पचास रुपये की आमदनी हुई। शामण्णा जब लगान वसूल करने होसहल्ली गये, तो वहाँ सब लोगों से कह दिया कि रामचन्द्र वकालत करने लगा है, और उनके मुकदमे भी उसके पास भिजवाने लगे। रामचन्द्र के ससुर ने भी अपने सब परिचित लोगों के हाईकोर्ट के मुकदमे अपने जामाता को दिलाने प्रारम्भ कर दिये। हरेक मास रामचन्द्र की आय बढ़ती चली गई। रोज-रोज हाथ में अधिकाधिक पैसा आने लगा। पहले ही रामचन्द्र को पकड़ने वाला कोई नहीं था, अब तो सब ठीक-ही-ठीक हो गया। ज्यों-ज्यों पैसा इकट्ठा होता जाता था, त्यों-त्यों रामचन्द्र का लालच भी बढ़ता जाता था। घर में कोई उस लालच को शान्त नहीं कर सकता था।

रामचन्द्र को रोज अट्ठाईस कचहरियों में घूमना पड़ता था। एक कचहरी का काम समाप्त करके वह दूसरी कचहरी में पहुँच भी नहीं पाता था कि वहाँ पुकार होने लगती और जज वकील के न पहुँचने के कारण दूसरी तारीख लगा देते। काम बढ़ने के साथ-ही-साथ यह झंझट भी बढ़ने लगा। तब मुवक्किल लोग शिकायत करने लगे। सोचते-सोचते अन्त में रामचन्द्र ने एक छोटी मारिस मोटर गाड़ी नीलाम में सस्ती बिकती हुई देखकर खरीद ली, और मरम्मत कराकर उसका उपयोग करने लगा।

पति की मनोवृत्ति का प्रभाव पत्नी पर भी होने लगा। एक तो वह धनी की बेटी थी, सुख में पली थी, उसके साथ जन्म से आलसी थी। रामचन्द्र का हुक्म था कि घर में लक्ष्मण और वेंकटेश की पत्नियों के होते हुए मेरी पत्नी को काम नहीं करना चाहिये। पहले पद्मा पति की इस आज्ञा पर उतना ध्यान नहीं देती थी। देवरानी और ननद सवेरे से शाम तक एड़ी-चोटी का पसीना एक करती रहें

और मैं बैठी देखती रहूँ, यह पद्मा से नहीं हो सकता था। वे मना करती रहतीं, पर पद्मा स्वयं ही काम ढूँढकर उनके साथ लग जाती! जया और शान्ता के थक जाने पर उनसे विश्राम करने को कहकर स्वयं ही खुशी से सारा काम समाप्त कर देती थी।

रामचन्द्र हमेशा पत्नी को उपदेश देता रहता था कि "क्यों काम करती है? वे दोनों तो हैं ही, उन्हें काम करने दे।" और जब पद्मा पति के उपदेश पर कान नहीं देती तो वह क्रोध में भरकर नाक-मुँह देखे बिना खूब पत्नी को पीटता। शान्ता और जया इस नरमेध को नहीं देख सकतीं, इसलिए सब काम स्वयं ही कर डालतीं।

रामचन्द्र ने पत्नी के सरस हृदय में यह भावना बैठानी प्रारम्भ कर दी कि मैं ऊँचा हूँ और दूसरे नीचे हैं। वेंकटेश को वह हमेशा 'भिखमंगा' कहकर पुकारा करता। लक्ष्मण उसकी दृष्टि में 'तम्बूरि-दासय्या' था।[1]

पद्मा पति के कठिन दंड को नहीं सह सकी और जैसा वह कहता था वैसे ही करने लगी। रामचन्द्र जिसको गाली देता उसको वह भी गाली देती। वह जिसकी प्रशंसा करता, पद्मा भी उसकी प्रशंसा करती। उसने देख लिया कि पति को खुशामद कितनी प्यारी है। अब उसने पति की प्रशंसात्मक चाटूक्तियाँ करना खूब सीख लिया। यदि रामचन्द्र किसी साधारण मुकदमे में भी जीतता तो भी पत्नी के सामने शेखी बघारे बिना उसका पेट ही नहीं भरता। पद्मा भी न चूकती और झट कहती, "तुम कितने होशियार हो जी, सब मुकदमों को जीत जाते हो। प्रतिपक्षियों की क्या दशा होगी जी!"

भोजन के बाद पद्मा ही पान का बीड़ा बनाकर लाती।

रामचन्द्र बड़े घमंड से कहता, "आज हाइकोर्ट का मुकदमा था

---

१. जो लोग तम्बूरा या वीणा लेकर भजन गाते हुए भीख माँगते फिरते हैं उन्हें मैसूर में 'दासय्या' कहते हैं।

प्यारी ।"

झट से पद्मा उत्तर देती, "तुम जीतकर आओगे यह निश्चित ही है । हाईकोर्ट को जाना हो तो तुमको जाना चाहिये। यों ही सब लोगों के जाने से क्या काम बन जाता है ।"

तब खुशी के मारे रामचन्द्र की बाँछें खिल जातीं । पत्नी अगर चुगली करती तो रामचन्द्र झट उस पर विश्वास कर लेता । पद्मा इस बात को खूब जानती थी । उसने अब इस अस्त्र का उपयोग अच्छी तरह से करना प्रारम्भ कर दिया । रामचन्द्र के घर आने के समय वह हाथ में एक-दो बर्तन लेकर रसोई या स्नानघर में दस बार दौड़कर जाती जिससे कि वह समझे कि मेरी पत्नी कितना परिश्रम करती है, और जब वह कचहरी को चला जाता तो भोजन करके अपने कमरे में जाकर दरवाजा बन्द करके मजे से सो जाती ।

शान्ता और जया सबको भोजन परसकर, रावसाहब के लिए पथ्य तैयार करके अपने-आप भोजन करके जब हाथ धोतीं तब दोपहर हो जाता । रामचन्द्र धूप में गया है, जब वह लौटकर आयेगा तो चिल्लायेगा, इससे डरकर उसके लिए कुछ-न-कुछ जल-पान और काफी तैयार करके रख देतीं । रामू के लौटकर आने के समय पद्मा उठकर स्वयं ही उसको जल-पान ले जाकर देती ।

रामू का स्वभाव खाते समय चुपचाप बैठने का नहीं था । वह कहता, "तूने ही बनाया है ना ?"

"हाँ !"

"खूब परिश्रम करती रह ! तेरी भुजायें बड़ी मजबूत हैं । हमेशा काम करती रह । इस घर के भीतर खटने के लिए तूने और बाहर खटने के लिए मैंने कमर कस रखी है । बाकी सब लोग मौज करते रहें ।"

रोज-रोज शान्ता और जया ऐसी ही बातें सुनती रहती थीं । जया

से छिपाकर शान्ता और शान्ता से छिपाकर जया रोतीं, और मन को तसल्ली देकर रह जातीं। एक दिन काम और दिनों से अधिक था। गाँव से छै किसान आये थे, उनके लिए अलग भोजन बनाना पड़ा। रागी का आटा गरम पानी में छोड़ते-छोड़ते शान्ता और जया के हाथ बिल्कुल थक गये। दोपहर का जल-पान बनाकर, फिल्टर में काफी डालकर रसोई में ही हाथ पर सिर रखकर बैठी-बैठी सो गईं। रामू पर आज कचहरी में खूब झाड़ पड़ी थी। जज साहब ने उसको खूब लताड़ा था कि तुमने मुवक्किलों को समझाया नहीं, और बेजान झूठा मुकदमा लेकर स्टाम्प और दूसरे खर्चों के लिए मुवक्किलों का पैसा फजूल खर्च कराया। वह गुस्सा रामू के मन में खौल रहा था। हमेशा की तरह ज्यों ही पद्मा ने जल-पान सामने लाकर रखा, त्यों ही वह सब घर वालों को गाली देने लगा। शान्ता और जया के ऊपर भी गन्दी गालियों की बौछार हुई। रसोई में लेटी हुई दोनों अच्छी तरह सुन रही थीं। सुनकर उन्होंने निश्चय किया, "कुछ भी हो, दोपहर का जल-पान हम बनायेंगी ही नहीं।"

अगले दिन तीसरे पहर उठकर पद्मा हमेशा की तरह रसोई में आई। जल-पान तैयार नहीं था। पति के आने का समय हो गया। तब उसने चूल्हा जलाकर काफी के लिए पानी रखा। इतने ही में रामू आ गया। तब जल्दी-जल्दी नें खराब काफी तैयार करके वही रामू के सामने ले जाकर रख दी। रामू ने काफी पद्मा के सिर पर उलटकर उसको अच्छी तरह पीटकर अपना मन ठंडा किया। जया और पद्मा इस हत्याकांड को नहीं देख सकीं और उन्होंने पुनः स्वयं जल-पान बनाना प्रारम्भ कर दिया।

एक दिन दोपहर को पद्मा भोजन करके रोज की तरह जाकर सो गई थी। उस दिन रामचन्द्र को कचहरी का काम अधिक नहीं था, इसलिए वह और दिन के समय से पहले ही लौट आया। तब तक काफी

तैयार नहीं हुई थी। यह देखकर उसके ऊपर क्रोध का भूत सवार हो गया। और उसने डंडा उठाकर बिना कुछ देखे-भाले पत्नी को पीटना शुरू कर दिया। वह उसका प्रहार नहीं सह सकी और बचाव के लिए दौड़कर दालान में चली गई। रामचन्द्र ने वहाँ भी उसका पीछा किया। तब पद्मा जोर से चिल्लाई। उसकी चिल्लाहट सुनकर वेंकटेश और लक्ष्मण दोनों दौड़कर वहाँ आ गये। यह देखकर रामचन्द्र का क्रोध और भी दुगना हो गया। गुस्से में उसे होश नहीं रहा और उसने जोर से पद्मा के लात मारी जिससे वह बेहोश हो गई।

यह देखकर वेंकटेश और लक्ष्मण के दिल को बड़ी चोट लगी। लक्ष्मण ने जया को बुलाकर उससे पद्मा का उपचार करने को कहा। वेंकटेश का सारा शरीर क्रोध से थर-थर काँपने लगा। वह बोला, "बड़े बहादुर और बलवान हो जी। पत्नी को पीटते-पीटते मार गिराया। तुम्हारी शूरता के क्या कहने! पढ़-लिखकर वकील बनकर तुम्हारा जन्म सार्थक हो गया। रावसाहब का नाम तुमने उज्ज्वल किया ना! अपने पुत्र को देखकर उन्हें जितना भी गर्व हो थोड़ा है।"

"तेरी इतनी जीभ! घर में भिक्षा का अन्न खाकर पड़ा रह कुत्ते! मैं अपनी पत्नी को जो चाहे करूँ। तू बीच में पड़ने वाला कौन है?"

"मैं एक मनुष्य हूँ। तेरी तरह जंगली पशु नहीं हूँ। पत्नी को देखकर उसके प्रति मेरे मन में प्रेम पैदा होता है। वह बेचारी काम करते-करते थक जाती है। तेरी मार-पीट को देखकर तो नीच आदमियों तक को शर्म आयेगी।"

"मेरे मामले में हाथ डालने वाला तू कौन है! रहना हो तो रह, नहीं तो मेरा घर छोड़कर चला जा! मेरे मामले में बीच में अब से आया तो गरदन पकड़कर बाहर निकाल दूँगा।"

"निकालेगा नहीं तो और क्या करेगा भाई ? मेहनत करके सब कमाया है। अपनी माँ को घूँट भर पानी पिलाने वाले महानुभाव, अब हम तेरा लक्ष्य हैं क्या ?"

अब तो रामचन्द्र की जीभ पर लगाम ही नहीं रही। वेंकटेश को जितनी गन्दी गालियाँ दे सकता था, देने लगा।

सुनते-सुनते वेंकटेश ऊब गया, और बोला, "स्त्री बेचारी, उसको चार मास का गर्भ है। उसको तूने लात मारी पापी। कल उसको कुछ हो गया तो ?"

रामचन्द्र ने जवाब दिया "हो जाय तो क्या तेरे बाप की जायदाद लुट जायेगी ?"

अब वेंकटेश से नहीं सहा गया। उसने रामू के कुरते का कालर पकड़कर उसके गालों पर जोर से चार तमाचे जड़ दिये। अब रामू की गन्दी जबान बन्द हो गई और वह जोर-जोर से चिल्लाकर रोने लगा।

वेंकटेश बोला, "इतने दिनों तक मैं यह सोचकर कि मालिक का लड़का है चुप रहा। आगे से कभी ऐसा किया तो दाँत तोड़ दूँगा।"

और फिर उसको छोड़ दिया। रामू रोता-रोता अपनी कोठरी के भीतर चला गया।

सौभाग्यवशात् पद्मिनी को कोई भारी चोट नहीं लगी थी। तीन-चार दिन पेट में खिचावट-सी होकर दर्द रहा। गरम पानी से सेक करने पर दर्द कम हो गया।

वेंकटेशय्या उसी दिन जाकर बारह रुपये मासिक भाड़े का एक छोटा-सा घर देख आया। उसमें परिवार के लिए उतनी सुविधा तो नहीं थी, फिर भी उसने सोचा कि कैसा भी हो परवाह नहीं। फिल-हाल इस बुरे सहवास से किसी तरह छुटकारा मिले। शान्ता के कानों में एक जोड़ी हीरे जड़े कर्णफूल थे। उनको बेचकर बरतन आदि

घर के लिए उपयोगी सामान खरीद लिया।

वेंकटेश रावसाहब से विदा लेने के लिए गया, और उनकी दशा देखकर आँखों में आँसू भरे लौट आया। सावित्रम्मा ने बहुत कहा, पर वेंकटेश अपने निश्चय पर अटल रहा। लक्ष्मण और जया से विदा लेना भी बहुत कठिन हुआ। शान्ता और जया एक-दूसरे को गले लिपटकर खूब रोईं।

शान्ता ने जया से पूछा, "घर दूर नहीं है। रोज आती रहेगी ना ?"

जया के मुँह से आवाज नहीं निकली।

शान्ता बोली, "जीत हमारी ही रही। जया अब सब-कुछ तेरे और लच्चू भैया के सिर पर पड़ेगा।"

जया ने तसल्ली देते हुए कहा, "क्या करूँ बहन ? जो भाग्य में है होने दो। हमारा कर्म-धर्म देखने वाला परमात्मा हमारे सिर पर है।"

सावित्रम्मा दौड़ी आईं। उन्होंने शान्ता को एक पटरे पर बैठाकर कुंकुम और पान-सुपारी दी और उसके साथ ही चोली का कपड़ा और एक सावरन दकर बोलीं, "शान्ता, तुम्हारी माता होतीं तो ऐसा नहीं होता। मेरा खयाल करके रामू को सब कोई क्षमा करें। तू पुत्री इस तरह दुखी होकर जा रही है, यह श्रेयस्कर नहीं होगा। रामू को भी श्रेयस्कर नहीं होगा। उसको तो समझ नहीं है। वह अपने को नवाब समझता है।"

अन्दर से रावसाहब के पुकारने की ध्वनि सुनकर सावित्रम्मा अन्दर चली गईं। वेंकटेश जब चलने को था तब रामू की मोटर का शब्द सुनाई दिया। रामू भीतर आया।

वेंकटेश उसको देखकर बोला, "हाईकोर्ट के वकील रामचन्द्र साहब, आपकी आज्ञा के अनुसार हम घर छोड़कर जा रहे हैं। आज

आपकी ही विजय हुई, किन्तु मैं एक बात कहे जाता हूँ, इसे अच्छी तरह याद रखिये। आज आपका हाथ ऊपर है। आज आपकी शुक्र दशा है। फलित ज्योतिष के अनुसार शुक्र दशा होने से आदमी की भाग्योन्नति होती है और शनि दशा होने पर बुरे दिन आते हैं। आप यह सोचकर कि शुक्र दशा के बल से मैं जो चाहे कर सकता हूँ, मनमानी करते हैं। खूब कीजिए। यह दुनिया बड़ी नहीं है। कहीं-न-कहीं तो आप और हम मिलेंगे ही। जिस तरह आपकी इस समय शुक्र दशा है उसी तरह मेरी भी शुक्र दशा जब प्रारम्भ होगी तब मैं आपका सब हिसाब सूद दर सद सहित चुका दूँगा—यह न भूलियेगा।"

और फिर पत्नी सहित चल दिया। रामचन्द्र को बड़ा क्रोध आया कि मेरा जो अपमान हुआ उसे लक्ष्मण ने भी देख लिया।

वह क्रोध से लाल होकर लक्ष्मण से बोला, "वह पागल की तरह जो जी में आया सो बकता जाता है और तू चुपचाप खड़ा देखता रहा.........।"

"तो मुझे क्या करना चाहिए था?"

"मेरी तरफ से चार बातें कहता तो तेरा क्या बिगड़ जाता?"

"तुम्हारी तरफ से कहने की कोई बात थी ही नहीं।"

"बड़े-छोटे भाई की भावना तक भी तेरे मन में नहीं।"

"वह भावना कैसे आयेगी? और वह भी तुम्हारे लिए? एक तरफ घमंड और एक तरफ पैसा रहते हुए तुमको किसी की क्या जरूरत है? दर्प और धन ही तुम्हारे भाई-बन्द हैं। सब-कुछ वही हैं।"

"तू भी तो उनकी ही तरफ है ना!"

"सच है कि मैं उनकी ही तरफ हूँ। पर यह तो बतलाओ कि तुम्हारी तरफ है कौन। आगे के लिए यही तैयारी तुमने की है ना? भविष्य के लिए यही तुम्हारा सम्बल है।"

"जो हुआ, सो हुआ। उसे छोड़! मैं तुझसे कभी किसी तरह

की सहायता नहीं मागूँगा।"

"बहुत अच्छा जी!"

यह कहकर लक्ष्मण ने बात समाप्त की। वेंकटेश और शान्ता के चले जाने से लक्ष्मण और जया को ऐसा मालूम हुआ, मानो कुछ खो गया। वेंकटेश और लक्ष्मण का मन जैसे घुल-मिलकर एक हो गया था, वैसे ही शान्ता और जया का मन भी एक हो गया था।

'जीत हमारी ही रही जया, अब सब-कुछ तेरे और लच्चू भैया के सिर पर पड़ेगा।' शान्ता के शब्द बार-बार जया को याद आते थे। अपनी असहायावस्था को सोचकर एक लम्बी साँस छोड़ी।

उन्नीस

पद्मा ने पुत्र को जन्म दिया। सावित्रम्मा को एक ओर तो अपार हर्ष हुआ, और दूसरी ओर एक तरह से भारी दुःख भी हुआ।

वे सोचने लगीं, 'अक्का जीतीं तो उन्हें कितना हर्ष होता? उन्हें बचाना हमारे भाग्य में नहीं था।'

घर में कोई आनन्द की बात होती तो सावित्रम्मा फौरन मीनाक्षम्मा से जाकर कहती थीं। महीने में कम-से-कम एक बार अक्का के नाम से चारजनी सुहागिनों को फूल और बीड़ा दिये बिना सावित्रम्मा को चैन नहीं पड़ता था। रामचन्द्र उस पर भी आक्षेप करता था। तब सावत्रम्मा छेड़ी हुई सिंहिनी की तरह फटकार देतीं, "रामू, तुझे इस बात से क्या मतलब? उनके बड़प्पन के ही कारण तू और मैं यहाँ पर हैं। तू अपना काम देख, मेरी बातों में दखल मत दे। ये सब बातें तुझे किस वास्ते?"

शान्ता रोज एक बार आकर पिता को देख जाती थी। रामू के लड़के के नामकरण के लिए उसने या वेंकटेश ने पैर तक नहीं रखा।

रामू ने कहा, "अच्छा हुआ, खर्च बच गया।" और सब काम उसने थोड़े खर्च में ही निपटा दिया।

सचमुच रामू की शुक्र दशा आरम्भ हो गई थी। वह जो भी मुकदमा हाथ में लेता उसमें अवश्य जीतता। इसका एक कारण भी था। जब-जब सुअवसर मिलता, हिरण्यप्पा जी अपने दामाद को साथ ले जाकर बड़े-बड़े अधिकारियों से, मजिस्ट्रेट और मुंसिफ आदि से

परिचय कराते रहते । रामू इस परिचय का खूब उपयोग करता और जजों के आश्रय का पूरा लाभ उठाता । वह उनकी 'मर्जी' का अनुसरण करने की विद्या में अच्छी तरह पारंगत हो गया था । कुछ अदालतों में तो रामचन्द्र ही सर तेजबहादुर सप्रू था ।

रामचन्द्र ने शीघ्र ही यह बात अच्छी तरह समझ ली कि वकालत के धन्धे में उन्नति करने के लिए केवल वकील होना ही पर्याप्त नहीं है । स्थान-परिवर्तन होकर जाने वाले मजिस्ट्रेट और मुन्सिफों के लिए दावत का प्रबन्ध करने के अलावा स्थान-परिवर्तन होकर जाने वाले दूसरे बड़े अधिकारियों के लिये भी वह दावत का प्रबन्ध करता । सरकारी अधिकारी रामू की दृष्टि में साक्षात् भगवान् थे । वे उसको दखकर हँस दें या चार बातें कर ले, बस इतना ही पर्याप्त है । और यदि चाय के लिए अपने पास बैठा लें तब तो मानो स्वर्ग का राज्य ही मिल गया । वह सरकारी अधिकारियों को जितना ऊँचा समझता था अन्य जनों को उतना ही नीच समझता था । वह यह भी चाहता था कि सरकार जिनका विरोध न करे ऐसे सार्वजनिक कामों में भाग लेकर चारों ओर अपने यश का विस्तार करूँ ।

रामू के कुछ मुवक्किलों के हाथ में सहकार-संघों का सूत्र-संचालन था । उन्होंने सलाह दी कि सहकार-संघों (कोआपरेटिव सोसाइटियों), तथा सहकारी बैंकों (कोआपरेटिव बैंकों) को सीढ़ी बनाकर ऊपर चढ़ना अच्छा है । रामू ने उसे वेद-वाक्य समझा ।

रामू जब एल-एल० बी० पास करके आया था, तभी वह अपने हाथ में एक हजार रुपये लेकर आया था । पूना में अपने खर्च के लिए उसे जितने रुपये की जरूरत होती, उससे बहुत ज्यादा वह हरेक मास अपने पिता से मँगवा लेता और मितव्ययिता से खर्च करके बचाकर बैंक में जमा करता रहता । इस धन से उसने कुछ शेयर 'कृष्ण जन्माष्टमी सहकार-संघ' के और कुछ शेयर 'कर्नाटक बैंक' के खरीद लिए थे ।

कर्नाटक बैंक राज्य-भर में सबसे प्रसिद्ध सहकारी बैंक था। उसके लगभग २३०० शेयर-होल्डर थे। उस बैंक के शेयरों की बड़ी माँग थी। कर्नाटक बैंक के डाइरेक्टर के पद के लिए बड़ी स्पर्धा होती थी। एकबारगी प्रयत्न करने वाले कोई भी उसमें सफलता नहीं पा सकते थे। लोग पहले कृष्ण-जन्माष्टमी आदि छोटे-मोटे संघों और बैंकों के डाइ-रेक्टर बनकर, कुछ नाम कमाकर तब कर्नाटक बैंक पर घेरा डालते थे। कर्नाटक बैंक के डाइरेक्टर का पद मिल जाय तो बाकी डाइरेक्टर पदों को घूरे पर डाल देते थे।

कृष्ण-जन्माष्टमी के दिन स्थापित होने के कारण उस सहकार-संघ का नाम 'कृष्ण-जन्माष्टमी को-आपरेटिव स्टोर्स' रखा गया था। उसके डाइरेक्टर का पद रामू को सुगमता से मिल गया। उसी वर्ष ही उसने कर्नाटक बैंक के डाइरेक्टर का पद पाने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किया। इस प्रयत्न को महा साहस ही कहना चाहिए।

जनाब शरीफ खाँ लोहे के एक बड़े व्यापारी थे। रोजगार के लिए आवश्यक थोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी जानते थे। बड़े दुनियादार आदमी थे, और किस आदमी से कैसे काम निकालना चाहिये और कैसे किसको नचाना चाहिए, यह खूब जानते थे। कर्नाटक बैंक की डाइरेक्टरी के उम्मीदवारों में वे भी एक थे।

चिन्तामणि लक्ष्मण शेट्टी कपड़े के एक बड़े व्यापारी थे। वे पहले एक दो बार बैंक के डाइरेक्टर भी रह चुके थे। उनमें और शरीफ खाँ में बड़ी मित्रता थी। शरीफ खाँ ने ही शेट्टी का परिचय वकील साहब से कराया। रामचन्द्र, शरीफ खाँ और शेट्टी तीनों बैंक के डाइरेक्टर की पदवी के लिए उम्मीदवार थे और तीनों ने मिलकर चुनाव लड़ने की तैयारी प्रारम्भ की। रामचन्द्र को वकीलों और सरकारी नौकरों का समर्थन प्राप्त था, मुसलमान मतदाता शरीफ खाँ के पक्ष में थे और व्यापारी वर्ग शेट्टी का समर्थक था। तीनों ने मिलकर काम प्रारम्भ

किया। तीनों शाम को रामचन्द्र के दफ्तर में बैठकर उस दिन के कार्य पर चर्चा करते।

चुनाव समाप्त हो गया। परिणाम प्रकाशित हो गया। बैंक के दस डाइरेक्टर होते थे। उनमें रामू को छठा स्थान मिला, शेट्टी को नौवाँ स्थान मिला और शरीफ खाँ को दसवाँ। सबने अपने मतदाताओं से पूर्ण मत (सिंगल वोट) ही दिलाया था। एक-दूसरे को काटना प्रारम्भ करने के कारण कोई आक्षेप नहीं कर सकता था।

इन तीनों ने यह निश्चय किया कि आगे भी तीनों मित्र मिलकर काम करें। शेट्टी बैंक के मन्त्री बन गये, शरीफ खाँ खजाञ्ची हो गये और रामू बैंक का वकील (कानूनी सलाहकार) हो गया।

अब तो मानो पूरा बैंक ही रामू और उसके दोनों मित्रों के हाथ में आ गया। अगले चुनाव के लिए अपनी जड़ मजबूत करने के लिए तीनों ने अपने पक्ष के लोगों को शेयर और कर्जा दिलाना प्रारम्भ किया। औरों से कह देते कि शेयर रहे ही नहीं।

कर्नाटक बैंक के डाइरेक्टर की पदवी से रामू को कई तरह से लाभ हुआ। डाइरेक्टरों को मिलने वाली फीस के अलावा बैंक के सलाहकार के रूप में भी उसको फीस मिलती थी। इस छोटी आय को रामू कुछ गिनता ही नहीं था। ऋण दिलाना हो तो जायदाद की कीमत के विषय में उसकी सलाह ली जाती थी, तब तो वह अच्छी तरह से अपना शुल्क वसूल कर लेता था। जो लोग ऋण लेना चाहते थे उनके ऊपर वह खूब अधिकार जमा सकता था। उनको जैसे जी में आये वैसे गाली दे सकता था। वे घर आते तो कहता, 'आफिस में आओ' और आफिस में आने पर कहता, 'बैंक में आओ' इस तरह उन्हें खूब तंग किया जा सकता था। रामू और उसके गुट को अप्रसन्न करके कोई जी नहीं सकता था। ऐसे लोगों को अपने शेयर खोकर बैंक को नमस्कार करके जाना पड़ता था।

अब रामू की गिनती नगर के गण्यमान्य पुरुषों में होने लगी। उससे पूछे बिना, उसको कार्यकारिणी-समिति में लिये बिना कोई भी सार्वजनिक कार्यों में हाथ नहीं डाल सकता था। यदि कोई उसकी उपेक्षा करता तो समिति गर्भ में ही मर जाती थी। समिति के सदस्य आपस में झगड़ा करके उसे समाप्त कर देते थे। तब रामू अपने मूँछें मरोड़ता हुआ कहता, "मैंने पहले ही कहा था न! मेरे बिना समिति बनाते हैं तो........."

और एक अर्थ-गर्भित मुस्कराहट उसके मुख पर विराजती।

रामू के दोनों मित्र मैसूर-राज्य की लोक-सभा के सदस्य थे। शरीफ खाँ मुसलमान-संघ की ओर से और शेट्टी वैश्य-संघ की ओर से चुने गये थे। इस मित्र-मण्डली ने सोचा कि रामू भी सदस्य हो जाय तो तीनों मित्रों के एक साथ आने-जाने में बड़ा आराम रहेगा। बैंक की ओर से एक प्रतिनिधि लोक-सभा में जाता था। बैंक के एक डाइ-रेक्टर मलूरुस कृष्णय्यंगार कुछ वर्ष से लोक-सभा में जाते थे।

तीनों मित्रों ने अय्यंगार साहब के पास जाकर एक विचार उसके सामने रखा, "अय्यंगार साहब देखिए, यदि आप एसेम्बली की जगह छोड़ दें तो शेट्टी जी बैंक के मन्त्री का पद आपके लिए छोड़ देंगे। आप चाहें तो मैं ही त्याग-पत्र दे दूँगा और आप खजाञ्ची बन सकते हैं।"

अय्यंगार बूढ़े हो गये थे। उनकी बहुत दिनों से इच्छा थी कि बैंक का मन्त्री बनकर कर्ज चुका दूँ। ज्यों ही शरीफ खाँ ने यह प्रस्ताव उनके सामने रखा त्यों ही उन्होंने फौरन खुशी से स्वीकार करके सदस्यता से त्याग-पत्र लिखकर दे दिया। डाइक्टरों की अगली बैठक में रामचन्द्र को एसेम्बली में भेजने का प्रस्ताव पास हो गया।

अब अय्यंगार साहब ने शेट्टी से आग्रह किया, "आप त्याग-पत्र कब भेजेंगे जी?"

"भेज दूँगा। जल्दी क्या है?"

इस तरह शेट्टी टालते चले गये ।

एक दिन अय्यंगार साहब ने गुस्से से भरकर शोर मचाया तो शेट्टी ने जोर से चिल्लाकर कहा, "क्या मैंने कहा था कि मैं त्याग-पत्र दे दूँगा ?"

बात यह थी कि शेट्टी ने अपने मुँह से नहीं कहा था कि मैं त्याग-पत्र दे दूँगा ।

उनकी ओर से शरीफ खाँ ने पूछा तो उन्होंने जवाब दिया, "त्याग-पत्र देने वाले वे हैं । आप उनसे न कहकर मुझसे कहते हैं तो उससे क्या फायदा ?"

अय्यंगार साहब मुँह लटकाये चुप हो गये । उन्होंने और कुछ झगड़ा नहीं किया । इसका यह कारण यह था कि उनको भय था कि अगले चुनाव में कहीं शून्य ही न मिले ।

एसेम्बली को तो इन तीनों से कोई लाभ नहीं था, पर इन तीनों को एसेम्बली की सदस्यता से बड़ा लाभ था । जेब से एक पैसा खर्चे बिना वर्ष में दो बार मजे में मैसूर की यात्रा हो जाती थी । मुफ्त में भोजन, जल-पान और दैनिक भत्ता मिलता था । कितने ही दिनों तक एसेम्बली में मुँह भी नहीं दिखाते और कन्नम्बाडी का बाँध, श्री रंगपट्टण तथा नंजनगूड की सैर करते-फिरते और अन्तिम दिन एसेम्बली के गुमास्ते की मदद से हाजरी डलवाकर सब दिनों के लिए भत्ता वसूल कर लेते ।

सरकार के विरोध में कोई बोले तो उसका विरोध करना रामचन्द्र अपना कर्तव्य समझता था । एसेम्बली का कोई सदस्य गाँव वालों पर कर-भार हल्का करने के लिए यदि कहता, "भूमि-कर का भार असह्य हो गया है महाराज ! वर्षा न होने से फसल सूख गई । गाँव के लोगों के पास खाने को अनाज नहीं और वे कंगाल ह गये हैं ।"

तो रामचन्द्र उत्तर देता, "जिस सरकार ने इतना हल्का भूमि-कर

लगाकर इतनी सुविधायें दी हैं, उस महान् सरकार को मैं बधाई देता हूँ। हम पर कर-भार अधिक बतलाने वालों को इंगलैंड और अमरीका में लगे कर-भार पर विचार करना चाहिए।"

फिर एक सदस्य कहता, "सरकारी अधिकारियों का वेतन कम करना चाहिए। जितना ही उनका वेतन बढ़ता है उतना ही उनका घमंड और बुरी आदतें भी बढ़ती जाती हैं। देहातों में उनका उपद्रव असह्य होता जाता है।"

रामचन्द्र गर्जते हुए उसका उत्तर यों देता, "हमारे अधिकारियों की दक्षता और उनकी योग्यता को देखते हुए उनको मिलने वाला वेतन बहुत कम है। मैसूर राज्य में वेतनों की श्रेणी उतनी भी नहीं जितनी ब्रिटिश भारत में है। यह बड़े दुःख की बात है। सरकारी नौकरों के वेतन का विरोध करने वाले बिल्कुल उत्तरदायित्त्वशून्य हैं। उत्तरदायित्वपूर्ण स्थानों के सुख-दुःख को वे बिल्कुल जानते ही नहीं।"

इस प्रकार लैक्चरबाजी करके वह अधिकारियों की चिरकृतज्ञता का पात्र बन जाता।

जो पत्र-पत्रिकाएँ सरकार के कृपा-पात्र थीं, वे रामचन्द्र के भाषणों को बड़े टाइप में छापकर उसके देश-प्रेम की प्रशंसा करते नहीं थकती थीं।

सरकार भी रामू की खैरख्वाही को भुलाती नहीं थी। उसने निश्चय कर लिया था कि 'हमारे पक्ष का इतने जोर से समर्थन करने वाले रामचन्द्र का उचित अवसर आने पर खूब गौरव करना चाहिये।'

बीस

गोपाल इण्टरमीडियेट परीक्षा में पास हो गया था। अब उसको मैसूर जाकर आर्ट्स कालेज में पढ़ना था। रामचन्द्र ने उदार मन से सीट के लिए प्रार्थना-पत्र दे दिया। वह बोला, "सीट कहाँ गई है, अवश्य मिलेगी।"

रावसाहब की दशा अत्यन्त खराब होती जाती थी। वे लोगों को पहचानते भी नहीं थे। भीमराव और सुन्दरराव उनके बिस्तरे से हिलते तक भी नहीं थे। शामण्णा बिलानागा रोज एक घंटा रावसाहब के सामने 'महाभारत' का पाठ करते थे। शामण्णा का महाभारत और महाभारत का गाना सुनकर रावसाहब का मुख शान्त हो जाता था। बाकी सब समय चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी रहतीं और उससे गम्भीर व्यथा प्रकट होती थी। सावित्रम्मा भी मन-ही-मन दुखी होती रहती थीं और सूखकर काँटा हो गई थीं। कितने ही दिनों से रावसाहब ने बोलना बन्द कर दिया था। वे अपने बिस्तर पर से ही आँख के इशारे से अपने मनोभाव प्रकट करते थे। शामण्णा रोज देव-पूजा करके एक चमचा तीर्थोदक (पूजा का जल) राव को पिला दिया करते थे।

अन्त में रावसाहब ने कुछ भी खाना-पीना बन्द कर दिया। एक बूँद दूध पिलायें तो वह भी कै हो जाता था।

रावसाहब के लड़कों को बुलाकर सुन्दरराव ने कहा, "अब कोई आशा नहीं है भैया, घंटे हैं या दिन ....."

लक्ष्मण ने पूछा, "क्या उन्हें बचाया नहीं जा सकता।"

पिता को बचाने के लिए जो चाहिए वह करने को तैयार था।

सुन्दराव बोले, "वैद्य और डाक्टरों के हाथों से ही कुछ हो सकता था, पर रावसाहब तो जीना ही नहीं चाहते। अब और कोई क्या कर सकता है ?"

एक दिन सायंकाल की बात है। शामण्णा धीरे-धीरे पढ़ रहे थे। रावसाहब ने थकान से आँखें मूँद ली थीं, और अब वे उन्हे खोल रहे थे।

शामण्णा ने पूछा, "क्या मैं बन्द कर दूँ ?"

रावसाहब ने इशारा किया, "नहीं।"

अक्षय-पात्र की कथा का प्रकरण था। द्रौपदी श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर रही थी। शामण्णा मायामालवगौलव राग से पूर्वी कल्याणी पर उतर आये थे। रावसाहब को नींद आ गई। शामण्णा महाभारत का पढ़ना बन्द करके धीरे से तम्बूरा नीचे रखकर रावसाहब को चादर ओढ़ाकर बाहर आ गये।

आधा घंटा बीत गया। दवा देने का समय हो गया। सावित्रम्मा ने दवा हाथ में पकड़कर धीरे से रावसाहब के ऊपर से चादर हटाई। नींद, शान्त, गहरी नींद। उसकी छाती धक् करके रह गई। औषध का बरतन हाथ से फिसलकर नीचे गिरकर टूट गया, उसके साथ ही सावित्रम्मा का हृदय भी टूट गया।

"हा ! मेरे स्वामी ! !"

इस तरह चीत्कार करके वह फर्श पर गिर पड़ी। रावसाहब के प्राण-पखेरू पूर्वी राग के संध्या के वैभव के साथ उड़ गये थे।

+ + +

बारह दिन तक सब रस्में यथाविधि हो गईं। बारहवें दिन वैकुण्ठ-समाराधना नामक रस्म होती है। वह भी पूरी हो गई। गाँव से शामभट्ट आये थे, वे भी उसी दिन लौट गये। शामण्णा ने

जब भोजन किया, तब साँझ हो गई थी। रामचन्द्र बाहर के बरांडे में बैठा एक पत्रिका पढ़ रहा था। शामण्णा हाथों में एक गठरी, एक तम्बूरा और एक पुस्तक पकड़े हुए सामने आकर खड़े हो गये।

रामचन्द्र ने पूछा, "क्या है शामण्णा जी, कहाँ जाने की तैयारी है ?"

"इस गमी की संध्या को जाने वाले 'मैं जाकर आता हूँ' ऐसा नहीं नहीं कहते। किन्तु मैं तो घर का ही आदमी था। आपसे अनुमति लेकर जाना चाहता हूँ।"[१]

"तो क्या आप कहीं जाकर लौट आयेंगे, या लौटेंगे ही नहीं, घर छोड़कर जा रहे हैं ?"

"आने की सम्भावना नहीं है। इतने दिनों तक आपने खाना-कपड़ा देकर मेरा पालन किया। मेरा ऋण-बन्धन चुक गया। अब आज्ञा दीजिये।"

रामचन्द्र बिल्कुल नहीं चाहता था कि शामण्णा चले जायें, पर यह आशा भी नहीं थी कि वे रुकने को तैयार हो जायेंगे।

'गाँव के हिसाब के सब कागज-पत्र तैयार करके मैंने आपकी मेज पर रख दिये हैं। देख लीजिये !"

"शामण्णा जी, क्या आप किसी तरह रुक ही नहीं सकते ?"

"नहीं, क्षमा करें।"

यह कहकर शामण्णा चले गये। वे घर छोड़कर जाने वाले हैं यह खबर पिछली रात ही लक्ष्मण को मालूम हो गई थी। लक्ष्मण ने भी कह देखा, पर शामण्णा ने अपना मन कड़ा कर लिया।

---

२. दक्षिण देश में विदा लेते समय 'जाकर आता हूँ' यह कहने का रिवाज है, जिसका अर्थ यह है कि मैं अब जा रहा हूँ, पर फिर आऊँगा और मिलूँगा। किन्तु जो लोग गमी में आते हैं, वे लौटते समय ऐसा नहीं कहते।

"शामण्णा जी, आप कहाँ जायेंगे ?"

"अभी कुछ निश्चय नहीं किया। चार दिन के लिए शृंगेरी जाकर गुरुजी की सेवा करके उसके बाद आगे जाने की सोच रहा हूँ। मेरे हाथ में तम्बूरा है बगल में झोली है, और कंठ में कुमार व्यास है।"

"......हाँ......देश विशाल है, जैसा कि सर्वज्ञ कवि ने कहा है,

करदि कप्पखुंटु, हिरिदोंदु नाडुंटु।

हरनेम्ब दैव नमगुंटु, तिरिविरिम् सिरिवन्तरारु ? सर्वज्ञ ॥"[१]

"हाँ ठीक बात है। अब आगे तेरा क्या करने का इरादा है ?"

"वही एक बड़ी समस्या है। मालूम होता है कि मुझे भी आपके ही रास्ते का अनुसरण करना पड़ेगा। मेरे मन में यही चिन्ता है कि आपके चले जाने पर इस 'राम-राज्य' में मैं अकेला कैसे रहूँगा ?"

"लच्चू भैया, चिन्ता मत कर ! तूने सत्य और धर्म को नहीं छोड़ा। सत्य और धर्म ही तेरी रक्षा करेंगे। एक-न-एक दिन तेरा बड़ा भैया भी तेरी प्रतिभा का प्रभाव देखेगा।"

"मुझे उसकी कुछ इच्छा नहीं शामण्णा जी ! दूसरों को न सताते हुए वह अपने-आपमें ही सुखी रहे तो काफी है। आप ही देखते हैं ना ? उसको भी कुछ सुख है क्या ? मन में सदा अशान्ति रहती है, हमेशा किसी-न-किसी बात के लिए असन्तोष रहता है। मन सुखी न हो तो क्या देह स्वस्थ रह सकता है ? उसकी दशा देखकर मुझको भी दुःख नहीं होता क्या ?"

"भैया, तेरा रास्ता अलग है, उसका रास्ता अलग है। दोनों कभी नहीं मिल सकते। तू ऊपर जाना चाहता है, वह आगे जाना चाहता है। कुछ भी हो, इस गरीब शामण्णा को भूलना मत। मेरे भाग्य में

---

१. मेरे हाथ में भीख माँगने के लिए नारियल का छिलका है, एक विशाल देश है। हर (शिव) नामक देव हमारा है। इससे बढ़कर धनी कौन है ?

होगा: तो फिर तेरे दर्शन होंगे।"

इस तरह लक्ष्मण को तसल्ली दी। लक्ष्मण को चारों तरफ सूना-ही-सूना दिखाई देता था। मन को किसी तरह शान्ति नहीं मिलती थी। उसकी बड़ी इच्छा थी कि तामिलनाड को जाकर अपनी संगीत-शिक्षा पूरी करूँ, पर अब इस इच्छा के स्वप्नवत् रह जाने की ही सम्भावना अधिक थी। वह लगातार यही सोचता रहता था कि घर भी अब से मेरे भाग से दूर होता जायेगा।

इक्कीस

हिरण्यप्पा और रामचन्द्र सवेरा होते ही अठारा कचेरी[1] जाने की तैयारी करने लगते थे। वे इसी काम के लिए आकर ठहरे हुए थे। रामचन्द्र अपने मुकदमों की फाइलें अपने वकील मित्र को सौंपकर अपने-आप भी जाने के लिए तैयार हो जाता था। दस-दस बार शरीफ खाँ और शेट्टी जी आकर 'क्या हुआ, क्या हुअ-" यह पूछकर चले जाते थे।

रामचन्द्र उदासी के साथ उत्तर देता। "अभी कुछ मालम नहीं हुआ। देखना है, भाग्य में क्या है ?"

तब शेट्टी इस तरह सान्त्वना देकर चले जाते, "आपको क्या डर है, चिंता मत कीजिये महाराज !"

अगले दिन जब शरीफ खाँ और शेट्टी जी आये तो रामचन्द्र का मुख खिला हुआ था। उद्वेग से वह पागल की तरह बातें कर रहा था। शेट्टी जी ने भी उद्वेग के साथ पूछा, "क्या हुआ ?"

तब रामचन्द्र ने एक लम्बा लिफाफा उनके हाथ में दिया। शेट्टी जी और शरीफ खाँ दोनों ने बड़े ध्यान से पढ़ा। वह सरकारी आज्ञा-पत्र था। रामचन्द्र को मुन्सिफ की नौकरी मिल गई थी।

खानसाहब दौड़कर एक फूलों का हार और गुलदस्ता ले आये और रामचन्द्र को देते हुए उन्होंने 'मुबारक' कहा।

शेट्टी जी से हाथ मिलाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की।

कार्यसिद्धि के ब्रह्मानन्द के साथ ही रामू को कुछ दुःख भी हुआ।

---

१. बंगलौर का बड़ा सरकारी दफ्तर, सेक्रेटेरियट।

बैंक, सहकार संघ, प्रजा-प्रतिनिधि-सभा सब से अब त्याग-पत्र देना पड़ेगा।

तब शेट्टी जी ने उसको दिलासा दिया, "चिंता क्यों करते हैं महाराज? हम नहीं हैं क्या? आप रहें तो क्या और हम रहें तो क्या?"

हिरण्यप्पा जी को बहुत खुशी हुई कि मैंने यहाँ आठ दिन रहकर जो प्रयत्न किया वह सफल हुआ और मेरे जामाता को नौकरी मिल गई। पद्मा भी सायंकाल होते-होते बसवनगुडी (बंगलौर के एक प्रसिद्ध मुहल्ले का नाम) की सब महिलाओं को यह शुभ समाचार सुना आई कि मेरे पति को नौकरी मिल गई।

लक्ष्मण और जया को भी खुशी हुई, किन्तु जया की छाती धड़कने लगी। उसका चेहरा गम्भीर हो गया।

लक्ष्मण ने पूछा, "क्या बात है जया?"

"कुछ नहीं, जेठ जी को नौकरी मिल गई, यह सुनकर आनन्द हुआ। इतनी ही बात है।"

"आनन्द हुआ तो काँप क्यों रही है?"

"हाँ, आनन्द अधिक होने पर कँपकँपी आती ही है।"

"हो सकता है। किन्तु तू काँपती क्यों है?"

"बतलाने से तुम क्रोध तो नहीं करोगे?"

"नहीं। बतला!"

"पहले ही जेठ जी को रोकने वाला कोई नहीं था। और अब तो सब ठीक-ही-ठीक है—मालूम नहीं कि तुम और मैं बच भी सकेंगे या नहीं।"

आँसुओं का बाँध टूट गया।

लक्ष्मण प्रेम से जयम्मा के ऊपर हाथ फेरते हुए बोला, "जय,

जय[1] हमेशा हमारी ही है। डर किस बात का ? मेरे रहते तुझे किस बात का डर है।

"मुझे अपनी कुछ चिंता नहीं, चिंता तुम्हारी है। तुम तो आधे भी नहीं रहे। सिर के बाल भी सफेद होने लगे हैं।"

"प्यारी जया, मैं बूढ़ा हो गया। इसीसे बाल सफेद होने लगे। मुझे क्या हो गया जिसके लिए तू इतनी चिन्ता करती है ?"

यह कहकर लक्ष्मण ने जया को सान्त्वना दी। जया का अनुमान गलत नहीं था। रसोई के काम का सारा बोझा अब जया के सिर पर आ गया। रामचन्द्र को नौकरी मिलने से मानो पद्मा को भी मिल गई। वही घर की मालकिन थी। घर का काम करने से मेरे आत्म-गौरव को धक्का लगेगा, यह भावना उसके मन में बोई गई। सावित्रम्मा न किसी के लेने में थी न देने में, वह सबसे अलग अपने-आप में ही लीन रहती थी। दुःखातप में लीन उससे कोई कुछ कहता नहीं था। जया किसी भी काम के लिए सास को नहीं बुलाती और न अपना कष्ट ही दूसरों से कहती। स्वयं ही कोल्हू के बैल की तरह काम में जुती रहती। सवेरे पाँच बजे उठकर काम में जुट जाती और रात को ११ बजे तक उससे छुटकारा नहीं होता।

पत्नी का पिसना देखकर लक्ष्मण को बहुत दुःख होता। किन्तु वह कुछ बोल नहीं सकता था। वह स्वयं कुछ कमाता नहीं था। भोजन के लिए दूसरों पर भार स्वरूप घर में बैठा रहता था। पत्नी तो उस तरह बैठी नहीं रह सकती थी।

जया मेहनत करने से तो नहीं घबराती थी। अपना घर है, मैं ही मेहनत नहीं करूँगी तो और कौन करेगा, इस भावना से वह कितना ही काम आ पड़े तो प्रसन्नता से निबटाती थी। किन्तु जेठ जी की

---

१ इसमें 'जया' शब्द में श्लेष है, एक अर्थ पत्नी का नाम, दूसरा अर्थ विजय है।

तीखी बातें उसको भूनकर रख देती थीं। वह मन में कुढ़ती रहती थी कि न तो मुझे बहुओं को सताने का अधिकार रखने वाली सास ही कुछ कहती है, और न पति ही कुछ कहता है, फिर जेठ के मुँह से ही क्यों इतनी बातें सुनूँ। जेठ जी की 'मर्जी' के अनुसार उनको पसन्द आने वाला भोजन पकाती थी। किन्तु वह कुछ भी क्यों न करे राम-चन्द्र को उसमें त्रुटियाँ अवश्य ही दिखाई पड़ती थीं।

अब यों ही जया का सिर चकराने लगा! कुछ भी खाये, फौरन ही उलटी होनी प्रारम्भ हो गई। सावित्रम्मा ने जया का काम स्वयं उठा लिया।

बहू कुछ काम करने को आती तो वह कहती, "नहीं चाहिये भैया! चार दिन आराम करके अपना स्वास्थ्य ठीक कर ले। मैं सब देख-भाल लूँगी।"

शान्ता जया को अपने घर बुला ले जाती। और वहाँ उसकी दवा-दारू कर देती। उसको कुछ रुचिकर जल-पान भी बनाकर खिलाती।

वह उससे कहती, "कोई चीज खाने की इच्छा हो तो बतला देना जया! अब किसी बात का संकोच मत करना।"

जया फौरन जवाब देती, "मुझे किसी चीज के खाने की इच्छा नहीं है।"

रामू को मालूम हो गया कि जया शान्ता के घर आती-जाती है। उसने सोचा कि वह काम से जी चुराती है इसलिए ये बहाने करती है। उसके जी में जो आया सो बकने लगा।

जया के कानों में ये बातें शूल की तरह चुभती थीं। तब से उसने सारा काम स्वयं ही करना शुरू कर दिया। कोई कितना ही कहता, वह छोड़ती नहीं।

शान्ता ने सुना तो वह बोली, "प्यारी जया, परमात्मा तेरी रक्षा करे। इस तरह अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश मत कर!"

पहले तो रामचन्द्र यही समझता था कि जया गर्भवती नहीं, यह सब काम से बचने का बहाना है, किन्तु अब तो गर्भ के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। पाँच मास पूरे हो गये। फिर भी उसको काम करते देखकर भी वह चुप ही रहा। किसी काम में जरा देर हो जाती तो उसकी गालियों की बौछार आरम्भ हो जाती।

एक दिन की बात है। रामचन्द्र के घर लौटने का समय हो गया था। स्नानघर में हंडे में एक कलसे से अधिक पानी नहीं था। जया ने यह सोचकर कि रामू पानी न होने के कारण गुस्सा करेगा, जल्दी-जल्दी पानी भरना शुरू किया। जल्दी-जल्दी पानी भरने से उसका सिर चकराने लगा। धम से कलसा उसके हाथ से फिसल गया। वह गिर पड़ी और बेहोश हो गई।

सावित्रम्मा दौड़कर आई। "अरे गजब हो गया!"

इस तरह चिल्लाकर झट से गाड़ी मँगवाकर बहू को प्रसूति-अस्पताल में ले जाकर दाखिल कराया। लक्ष्मण को अपने सामने शून्य-ही-शून्य दिखाई देने लगा। जब कुछ दिखाई न दिया तो अस्पताल के फाटक के पास जाकर बैठ गया।

खबर सुनते ही शान्ता अस्पताल में दौड़कर आई। वह जया की हालत नहीं देख सकी और सिर झुकाकर बैठ गई।

डाक्टर तैयारी करके जया को ऑपरेशन-रूम में ले गए। पाव घंटे के भीतर ही अस्पताल के बड़े डाक्टर ऑपरेशन-रूम में आये। सावित्रम्मा, लक्ष्मण और शान्ता मूर्तिवत् बाहर बैठे थे। रूम से बाहर आने वाली नर्स से सावित्रम्मा ने पूछा, "जच्चा बच गई क्या माई?"

"देखना है। बच जाय तो आपका बड़ा सौभाग्य समझना चाहिये।"

लक्ष्मण कभी द्वार की ओर देखने लगता था और कभी सामने

लगी घड़ी की ओर दखने लगता था। उसको एक-एक मिनट एक-एक युग-सा लगता था। पाव घंटा बीता, आधा घंटा बीता, एक घंटा बीता। डाक्टर लोग एक-एक करके बाहर आने लगे।

किसी के मुख पर मुस्कराहट नहीं थी। सब गम्भीर थे।

शान्ता ने एक डाक्टर से पूछा, "क्या हुआ डाक्टर साहब ?"

डाक्टर ने लम्बी साँस लेकर कहा, "माई जी; हमारा प्रयत्न सफल नहीं हुआ।"

लक्ष्मण-खड़ा-ही खड़ा बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा।

बाईस

लक्ष्मण की दशा ही बदल गई। खड़ा होने पर एक जगह खड़ा न रह सकता, बैठने पर बैठा नहीं जा सकता। शरीर की कुछ सुध-बुध नहीं थी। शरीर के ऊपर कपड़ा है या नहीं इसका ध्यान ही उसके मन में नहीं आता था। पागल-जैसा हो गया था। दाढ़ी न बनवाने के कारण सारा चेहरा बालों से ढक गया था। सिर पर आधे बाल सफेद हो गये थे और जो पहले से ही गम्भीर उसके चेहरे पर और भी अधिक गम्भीरता की छबि ला देते थे। वह अपने-आप ही गाने लगता और फिर चुप हो जाता। कभी-कभी कई-कई दिन तक मुँह नहीं खोलता। तम्बूरे को देखकर खिलखिलाकर हँस पड़ता। हँसना प्रारम्भ करता तो हँसता ही रह जाता।

शान्ता बहुत डरी। उसे ऐसा लगा कि पिता की जो दशा हुई थी वही बड़े भैया की होने वाली है। भैया की दशा देखकर भीतर का दुःख बाहर आ जाता। वह धीरे से लक्ष्मण को बुलाकर अपने घर ले गई और उसे वहीं रखा। छोटे बच्चे की तरह उसकी देख-भाल की। एक दिन उसने तम्बूरा माँगा तो रावसाहब के घर से उसका तम्बूरा मँगा दिया।

तम्बूरे की श्रुति ठीक करके लक्ष्मण ने जरा देर बजाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी बहने लगी। तब तम्बूरे के तारों को एक-एक करके उखाड़कर वहाँ से उठकर बाहर चला गया।

साँझ हो जाने पर भी भैया की सूरत दिखाई नहीं दी। रामू के घर गया होगा, इसलिए वहाँ जाकर देख आई। भैया वहाँ पर भी

नहीं गया था। पति के आते ही शान्ता ने उसे खबर दी। वेंकटेश किसी की मोटर लेकर भीमराव के घर, सुन्दरराव के घर, अनन्ताचार्य के घर आदि सब कहीं चक्कर लगा आया, किन्तु लक्ष्मण का कुछ पता न चला।

शान्ता लगातार 'भैया, क्या तू चला ही गया ?' इस तरह चिल्लाती हुई रोने लगी।

जब रामचन्द्र ने यह खबर सुनी तो उसके मन को शान्ति हुई, "फिलहाल शनि छूट गया।"

रामचन्द्र को नौकरी मिलने के बाद पद्मा के मन में अनेक परिवर्तन आने लगे। रामचन्द्र ने पत्नी को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए एक मेम रखी। पद्मा की माँग सिर के बीच में से खिसककर एक ओर को आ गई। पैरों में ऊँची एड़ी का जूता आ गया। उसे पहनकर ठीक तरह से न चल सकने के कारण एक-दो बार पैरों में मोच भी आ गई। कानों में से कर्णफूल निकलकर उनकी जगह लटकने वाले नये फैशन के संबोधन-चिन्हाकार कर्ण फूल (लवलाँक) आ गये। चोली की आस्तीनें छोटी होती-होती अन्त में कन्धे तक पहुँच गईं। दिन में दस बार मुँह पर हैजेलीन स्नो मले बिना उसको चैन ही नहीं पड़ता था।

वस्त्रों और शृंगार का शऊर सीख जाने तथा अंग्रेजी के चार शब्द बोलना सीख जाने पर अपनी पत्नी को रामू ने 'लेडीज-क्लब' का सदस्य बना दिया। तीसरे ही दिन हाथों में टेनिस का रैकेट आ आ गया।

रामचन्द्र साहब बन गया और पद्मा मेम साहब बन गई। पकाने के काम के लिये एक रसोइया रख लिया गया। पद्मा का सारा समय साज-सिंगार, दोस्तों के आदर-सत्कार, टेनिस खेलने और मेमसाहब से अंग्रेजी सीखने के लिए ही काफी नहीं होता था। बच्चे

गोवर्धन की देखभाल करने के लिए भी फुरसत नहीं मिलती थी। गोवर्धन के लालन-पालन की सारी जिम्मेदारी रसोइया नारायणाचारी, दफेदार दासथा और मोटर-ड्राइवर जान के ऊपर थी। जब रामू पूछता कि "क्या गोवी सो रहा है?" तभी पद्मिनी को बच्चे की याद आती।

तेईस

बंगलोर-जैसे महानगर में गुजर करना वेंकटेश के लिए बड़ी समस्या हो गई। उसने जीवन-बीमा के एजेण्ट का पेशा ग्रहण किया। यह काम बहुत कठिन था। वह किसी से बीमा कराने को कहने जाता तो वही आदमी किसी-न-किसी कम्पनी का एजेण्ट निकल आता। बीमा कराने में शहर के लोगों को विश्वास नहीं था, साहस भी नहीं था। उनके सामने यह समस्या थी कि हरेक महीने प्रीमियम के पैसे कहाँ से दें। गाँव के लोगों का यह विश्वास था कि बीमा कराते ही आदमी मर जाता है और इस पर बीमे के एजेण्ट सीधे-सादे लोगों को लूटकर खा जाना चाहते थे। कई बार उसने सोचा कि बीमे का धन्धा छोड़ देना ही अच्छा है। फिर उसने यह कहकर अपने मन की तसल्ली कर ली कि हरेक काम में कुछ-न-कुछ कष्ट होता ही है।

दो वर्ष तक परिश्रम करने के बाद अपने धन्धे के सब ऊँच-नीच अच्छी तरह से वेंकटेश की समझ में आ गये। उसने देखा कि बीमा आपत्काल में वस्तुतः मनुष्य की रक्षा करता है। अनुभव से उसका रोजगार भी बढ़ने लगा और उसका रहस्य भी समझ में आया।

जब उसकी कम्पनी ने उससे कहा कि—"इस वर्ष तुमको तीन लाख का बिजनेस लाकर देना चाहिये।" तब वेंकटेश ने "परमात्मा ही मालिक है" यह कहकर कम्पनी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

वकटेश को मासिक वेतन, यात्रा का भत्ता और बीमा के धन के ऊपर कमीशन मिलना आरम्भ हो गया।

कम्पनी ने वेंकटेश की योग्यता और ईमानदारी को परखा और उसकी माँगी हुई सब सुविधाओं के लिए खुशी से प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया। वेंकटेश को गाँव-गाँव घूमना पड़ता था। यात्रा के लिए उसने एक 'शेबुले' मोटरकार खरीद ली।

मोटर खरीदने के बाद रामचन्द्र की आँखों में वेंकटेश मनुष्य नजर आने लगा। पद्मा शान्ता को ढूँढकर उसके घर भी एक-दो बार हो आई। रामू अपनी चाय-पार्टियों में कभी वेंकटेश को निमन्त्रण नहीं भेजता था, इस बार उसने भेजा। किन्तु वेंकटेश और शान्ता दोनों में से किसी ने भी रामू का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। वेंकटेश का घमंड देखकर रामू को क्रोध तो आया पर क्रोध का प्रदर्शन करने के लिए उसको कोई रास्ता नहीं मिला।

गोपाल बी० ए० परीक्षा समाप्त करके बंगलौर लौट आया। अपने घर में हुए परिवर्तनों को देखकर उसे आश्चर्य हुआ। भाभी के नये अवतार को देखकर वह जमीन में धँस गया। उसने अपना सारा समय वेंकटेश के घर में ही बिताना प्रारम्भ कर दिया।

तब शान्ता एक दिन बोली, "गोपी, जब तू सारे दिन यहीं रहता है

तो रामू और भाभी तुझसे क्या कहते हैं ?"

"वे कुछ भी कहें, मुझे परवा नहीं। उनका नया अवतार, चाल-ढाल कुछ भी मुझको पसन्द नहीं।"

"ऐसा नहीं कहना चाहिये भैया! कुछ भी हो, रामू तेरा बड़ा भाई नहीं है क्या ?"

"लच्चू भैया के घर छोड़कर जाने के बाद बड़े भाई के प्रति आदर की भावना भी उसीके पीछे चली गई। मनुष्यों से सम्बन्ध रखा जा सकता है, किन्तु इनसे सम्बन्ध कैसे रखा जाय ? किसी ने मुँह पर पाउडर लगाया तो हमारी भाभी ने भी लगा लिया। किसी ने

ऊँची एड़ी का जूता पहना तो हमारी भाभी ने भी पहन लिया। दूसरे जो कुछ करें, हमारी भाभी को वैसे करना ही चाहिये। हमारे भाई कल उस चीनी नट को पैर ऊपर करके हाथों के बल चलते देखें तो शायद वे भी वैसा ही करने लग जायँ।"

"उनके विषय में तू बहुत कठिन ... ..."

"कठिन नहीं शान्ता बहन! मैंने इतना ही कहा था कि क्या अपनी बुद्धि से बिल्कुल ही काम नहीं लेना चाहिये। परसों की बात है कि हमारे घर एक ईसाई मिशनरी सिस्टर (धर्म-प्रचारिका) अनाथालय के लिये चन्दा माँगने आई थी। उसके साथ हमारी भाभी अंग्रेजी की टाँग तोड़ने लगीं। वह तमाशा देखने लायक था। वह सिस्टर अच्छी तरह कन्नड जानती थी। उसको हमारी भाभी की अंग्रेजी असह्य हो गई और वह कन्नडी बोलने लगी, किन्तु हमारी भाभी अंग्रेजी ही झाड़ती चली गईं। कृत्रिम जन और कृत्रिम ही उनकी बोल-चाल।"

"तो क्या अंग्रेजी सीखकर उसमें बोलना ही नहीं चाहिये।"

"मैं यह नहीं कहता शान्ता बहन! किन्तु हरेक बात की एक सीमा होती है। वह मिशनरी स्त्री दान माँगने आई थी। उसके आगे मेरी भाभी को अपना पाण्डित्य दिखलाने की क्या आवश्यकता थी? यदि कुछ देना था तो देकर उसे भेज देना चाहिए था। पौडर, जूता और अंग्रेजी आ जाने से क्या आदमी संस्कारी और सभ्य बन सकता है? घर में तेरे प्रति, जीजा जी के प्रति, जया और लक्ष्मण के प्रति जो व्यवहार उन्होंने किया है, कितना ही पौडर लगाने पर भी वह ढका नहीं जा सकता।"

"रहने दे भैया! उन सब बातों की याद मत दिला! गोपी, क्या लक्ष्मण की कुछ खबर मिली?"

"कुछ नहीं मिली बहन! यदि हमें यह मालूम हो जाय कि वह

जीता है तो इतना ही काफी है पता नहीं कहाँ है ? क्या कर रहा है ? उसकी विद्या उसको बचाये।"

"ऐसा मालूम होता है कि उसने विद्या को भी छोड़ दिया है। यहाँ से चलने से पहले तम्बूरा मँगाकर उसके सब तारों को तोड़कर तब वह गया था। मैंने तम्बूरा वैसे ही उठा कर रख दिया है।"

"बहन, तूने अच्छा किया। उसमें तार डलवाकर रखना चाहिये महाराज जब आएँ तब उसे ले लें।"

"क्या तुझे विश्वास है कि वह आयेगा ?"

"हाँ बहन, वे कहा करते थे कि मेरा तप समाप्त नहीं हुआ। मैं कहता था कि तप को प्रभु अर्पण करने तक उसकी सिद्धि प्राप्त नहीं होती। वे कहते थे कि प्रभु अर्पण करने से पहले कुछ पूँजी कमाकर रखूँगा, जब मेरे हाथ में ही कुछ नहीं तो मैं गज से नापूँ किस चीज को ? मैं समझता हूँ कि अब वे पूँजी कमाने में लगे हैं।"

शान्ता की आँखों में आनन्दाश्रु आ गये।

वह बोली, "चाहे कभी आये, कुशल से रहे यही काफी है।"

फिर कुछ याद करके बोली, "गोपी भैया, तूने कहा था ना कि मैं अपनी सब कथाओं का संग्रह करके एक पुस्तक बना दूँगा। उसका क्या हुआ? "

गोपाल ने जेब से एक पुस्तक निकालकर उसके हाथों में रख दी।

शान्ता ने उच्च स्वर से पढ़ा, लेखक—श्री गोपालराव। "साध" (दस गल्प)।

"गोपू भैया, तू कितना झूठा है ! मुझे बताया क्यों नहीं ? मालूम होता है, कथा लिख-लिखकर झूठ बोलने का पाठ तूने खूब सीखा है।"

"नहीं बहन, मैं सोच रहा था कि पुस्तक छप जाने पर तुम्हारे हाथों में देकर तब कहूँगा।"

उसी समय वेंकटेश की मोटर की आवाज सुनाई दी। पति के भीतर पैर रखते ही शान्ता अपने उत्साह को न रोक सकी और फौरन पुस्तक उसको दिखलाती हुई बोली, "तुमने गोपू भैया की पुस्तक देखी जी !"

वेंकटेश ने कपड़े उतारे बिना ही बैठकर पुस्तक के पन्ने उलट पलटकर कहा, "बहुत आनन्द हुआ। गोपी, परमात्मा करे, ऐसी सैंकड़ों पुस्तकें निकलें।"

"जीजाजी, आपका आशीर्वाद है।"

"मैं भी ठीक समय पर आ पहुँचा। तुमसे कुछ बातें करनी हैं। शान्ता, कुछ भात तो परोसकर ले आओ। यहीं बैठकर गोपी से भी बात-चीत करता जाऊँगा। गोपी, तुम भी यहीं भोजन कर लो।"

"नहीं भैया, घर में एक हंगामा उठ खड़ा होगा।"

"ऐसी बात है ? तो शान्ता एक प्याला चाय तो बनाकर दे दो।"

शान्ता ने वेंकटेश को भोजन परोस दिया। जब वह भोजन करने लगे तो गोपी के लिये एक प्याला चाय बनाकर ला दी।

वेंकटेश ने पूछा, "गोपू भैया, अब क्या करने का इरादा है ?"

"आशा है कि मैं इस वर्ष पास हो जाऊँगा। आगे एम० ए० के लिए पढ़ने का विचार है।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद भाग्य-परीक्षा। नौकरी ढूँढना।"

"किस तरह की नौकरी ?"

"साहित्य-सम्बन्धी कोई काम मिल जाय तो मुझे बड़ी खुशी होगी भैया, ग्रन्थकार ही रहना हो तो उससे तो एक पैसे की भी आमदनी नहीं होती।"

"क्यों ? क्या 'साध' से तुमको कुछ नहीं मिला क्या ?"

"पुस्तक की ५० प्रतियाँ मिली हैं। मालूम नहीं, प्रकाशक को छपाई का खर्च निकलेगा या नहीं। वे भी पैसा कहाँ से लायें ?"

"ऐसा है तो तुम पत्रकार का काम क्यों नहीं करते ?"

"किसी अच्छे पत्र में काम मिले तो मैं तैयार हूँ। मेरी भी यही इच्छा है कि इस तरह का काम करूँ।"

"ऐसी है तो सुनो। तुमसे एक बात कहता हूँ। अनन्तराव के 'वीर कर्नाटक' को जानते हो ?"

"हाँ जानता हूँ।"

"मैं अनन्तराव जी को थोड़ा-बहुत पैसा देता रहा हूँ। वह सब मिलकर पाँच हजार रुपये हो गया है।"

"वे इतना पैसा चुका ही कैसे सकते हैं ?"

"हाँ, यही तो बात है। और दो हजार रुपया दे दूँ तो वे अखबार और प्रेस सब-कुछ मेरे नाम लिख देने को तैयार हैं। उन्होंने पैसा दिया नहीं, और मैंने पैसा लिया नहीं। यह सोचकर कि दिया हुआ पैसा भी मारा जायगा न, अब और भी दो हजार रुपये देकर प्रेस खरीदना पड़ेगा।"

"आपने क्या सोचा है ?"

"तुम कोई पत्र चलाना चाहो तो और भी दो हजार रुपये देकर उसे खरीद लूँगा।"

"मेरा विचार एम० ए० के लिए पढ़ने का है ना ?"

"अच्छा एम० ए० पास कर लो। तब तक किसी और आदमी को रखकर मैं पत्र चलाता रहूँगा। तुम कभी-कभी लेख लिखते रहना। एम० ए० परीक्षा समाप्त होने के बाद आकर सम्पादन का भार उठा लेना।"

"अच्छा ऐसा ही सही । जीजाजी, इन अनन्ताचार्य जी से आपका परिचय कैसे हुआ ?"

"उनके पत्र में मैं अपनी कम्पनी का विज्ञापन देता था । आते-जाते घनिष्ठता हो गई । उनके कष्ट देखकर मुझसे चुप न रहा गया । मैंने पैसा दे दिया ।"

"गोपी, इनका सब ब्योहार ऐसा ही है । बस, हाथ में पैसा होना चाहिये । फिर तो जो माँगे उसको इन्कार नहीं कर सकते । ये महाराज कर्ण के अवतार हैं ।"

इन शब्दों से शान्ता ने अपने पति के स्वभाव का बखान किया ।

"यह अखबारों में किसी मजिस्ट्रेट की खबर आ रही है ना । जीजाजी, ये कौन मजिस्ट्रेट हैं ?"

"किसकी बात है ?"

"किसी मजिस्ट्रेट ने किसी गुमाश्ते को बुरी-बुरी गालियाँ दीं उसने कचहरी में दावा किया । मजिस्ट्रेट साहब ने उससे माफी माँग-कर पीछा छुड़ाया । 'वीर कर्नाटक', 'तायिनाडु', 'विश्व कर्नाटक' सभी अखबारों में यह समाचार आया था ।"

"कौन हैं भैया, मुझे नहीं मालूम । गोपी भैया, यह अखबार मैं खरीद रहा हूँ, यह बात अभी कुछ दिनों तक गुप्त रहे ।"

"अच्छा जीजाजी !"

गोपाल देर होने के कारण उठकर जब चला गया तो शान्ता ने पूछा, "वे मजिस्ट्रेट कौन हैं जी ?"

"कौन हैं, मुझे क्या मालूम ?"

"अखबार तुम्हारा है और तुम्हें मालूम नहीं ? बतलाइये न, परवाह नहीं ।"

"और कोई नहीं, खास तुम्हारे भाई रामचन्द्र राव हैं ।"

"मेरा भी अनुमान यही था । इसीलिए मैंने पूछा था । तुमने यह

खबर क्यों छापी ?"

"अखबार में आनी चाहिये। जब दूसरे अखबार छापते हैं, तो क्या हम उसे छोड़ सकते हैं ? हमारे संवाददाता ने अपनी आँखों से जो देखा वही लिखा है। वे हजरत कचहरी को भी अपना घर समझे बैठे थे।"

"मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ। ऐसी बातें मत छापो जी ! कहीं नौकरी न चली जाय।"

"जाती है तो जाने दो। गरीबों को भी जीने दो। देख शान्ता, मैंने झूठी खबर नहीं छपवाई थी। सच्ची खबर मिलने पर जरूर छपवाऊँगा।"

"तुम्हारी इच्छा।"

शान्ता के मन में बड़ी अशान्ति थी।

रामचन्द्र के मन में भी शान्ति नहीं थी। अदालत में जो घटना हुई थी वह बड़ी अपमानजनक थी। मानो इतना ही अपमान काफी नहीं था, और इन बदमाश अखबार वालों ने वह खबर सारे शहर में फैला दी थी। रामचन्द्र के क्लब में भी उसीकी चर्चा थी, और पद्मा के क्लब में भी सिवाय उसके और कोई चर्चा ही नहीं थी।

रामचन्द्र ने सरकार से प्रार्थना की कि 'कृपा करके यहाँ से मेरा स्थान परिवर्तन कर दीजिये।'

तब उसका स्थान-परिवर्तन मैसूर को हो गया, और उसने 'जान बचा' यों कहकर शान्ति की साँस ली। इसके साथ ही थोड़ी खुशी भी हुई कि गोपाल को छात्रावास में रहने के लिये जो खर्च भेजना पड़ता था, वह अब मैसूर में मेरे ही साथ रहने से बच जायगा। किन्तु गोपाल को दुःख हुआ कि अब छात्रावास में रहना नहीं मिलेगा, और घर में बड़े भाई के साथ रहने के कारण मेरी स्वतन्त्रता में बाधा पड़ेगी। किन्तु एम. . पास करने का लक्ष्य आँखों के सामने रहने

के कारण सब घर के झंझट भूल गये। पद्मा को बड़ा दुःख हुआ कि बंगलौर का जीवन, क्लब और यार-दोस्त सब छूट जायेंगे। फिर यह जानकर कि मैसूर में भी तो क्लब है, मन कोतसल्ली दी और सोचा कि वहाँ भी साथिनियाँ और यार-दोस्त मिल जायेंगे।

चौबीस

लक्ष्मण की जो दशा थी उसमें उसे कोई भी पहचान नहीं सकता था। गढ़ों में धँसी हुई आँखें, आधे पके हुए सिर के बाल, सूखकर अस्थि-कंकाल-मात्र बचा हुआ शरीर, गन्दगी का ढेर बने हुए कपड़े इस सबको देखकर कौन कह सकता था कि यही लक्ष्मण है? रेल मिल जाती तो उसमें चढ़ जाता, और जब मन में आता उतर जाता। बस मिल जाती तो उसमें चढ़ जाता और जब जी में आता उतर पड़ता। कहाँ जाना है इसका कोई निश्चय नहीं, लक्ष्य नहीं। आज जिस गाँव में है उसमें कल नहीं, और कल जिसमें है उसमें परसों नहीं। बैठने पर बैठा नहीं रहा जाता, और खड़ा होने पर खड़ा नहीं रहा जाता। कोई उसको देखे तो उससे बेतहाशा दूर भागता। कोई दया करके दे देता तो भोजन कर लेता, और न देता तो भूखा ही रह जाता। देखकर सब लोग 'पागल' कहकर हँसी उड़ाते थे। होटल में लगे हुए दर्पण में स्वयं ही अपना मुँह देखकर 'पगला' कहकर हँस पड़ता। कभी-कभी सोचता कि दर्पण में मैंने जिस आदमी को देखा था, वह दूसरा है और मैं दूसरा हूँ। दर्पण में देखे हुए पगले के रूप को सोच-सोच कर अपने-आप ही हँसता रहता। कभी-कभी पुरानी बातें भी याद आतीं। उसकी स्मृति अधूरी होती। एक-दो बार पुलिस के हाथ में पड़ गया, तब वह अपना परिचय दिये बिना चला जाता। वे भी उसे पगला समझकर चार छड़ी लगाकर आगे चला भगा देते। लड़के उसके पीछे दौड़ते और उसे पत्थर फेंककर भगा देते।

तब वह कहता, 'मैं ही पगला हूँ। वह आइने में देखा हुआ आदमी बड़ा अक्लमन्द था।'

यह पागलपन लक्ष्मण को मदरास बुला ले गया। वहाँ वह तिरुवल्लिकेणी मुहल्ले में घूम रहा था तो उसने एक मकान में भीड़ देखी। कुतूहलवश वह भी वहाँ जाकर खड़ा हो गया। उस घर में विवाह था और भीतर से संगीत की मधुर ध्वनि आ रही थी। बहुत-से लोग गली में खड़े गाना सुन रहे थे। अपने लिए थोड़ी-सी जगह निकालकर लक्ष्मण भी वहाँ खड़ा होकर गाना सुनने लगा। गवैये ने तोडी राग की आलापना प्रारम्भ की थी। उसे सुनकर लक्ष्मण की छाती धकधक करने लगी। उसके सिर में जो शून्यता भरी हुई थी वह कुछ दूर होने लग गई। आलापना समाप्त हो गई। लक्ष्मण बेहोश होकर गिर पड़ा और सिर में भारी चोट आई। तब विवाह के घर वालों ने उसे उठाकर अस्पताल में भिजवाया।

सिर का घाव अच्छा हो रहा था। अब लक्ष्मण को सब-कुछ याद आने लगा। अपना जीवन, अपनी स्थिति सब याद करके वह फूट-फूटकर रोने लगा। जया-जया का रूप उसके सामने आकर खड़ा हो गया।

"तुम हार गये।"

"नहीं जया!"

"तुमने मुझे धोखा दिया।"

"नहीं जया, हरगिज़ नहीं।"

"तुम कलाकार बनना चाहते थे। तुम्हारी वह इच्छा कहाँ गई?"

"तुम्हारे पीछे चली गई।"

"मैं कहाँ गई? तुम्हारे पास ही तो हूँ ना"

"जया!"

"तुम कर्तव्य-भ्रष्ट हो गये। अपना लक्ष्य भूल गये।"

"नहीं। भूला नहीं।"

"तुमने गुरु-ऋण नहीं चुकाया। चन्नप्पा से क्या कहोगे? अनन्ताचार्य से क्या कहोगे ?"

"वह ऋण चुकाऊँगा।"

"अवश्य ?"

जया का रूप बार-बार उसके सामने खड़ा हो जाता।

सायंकाल डाक्टर को आने पर उसने उनसे पूछा, "डाक्टर साहब, अब और कितने दिन अस्पताल में रहना पड़ेगा ?"

"तीन-चार दिन। तुम्हारा घाव तो भर गया। अब कुछ दिन आराम करना चाहिये।"

"क्या मैं आपसे एक बात पूछ सकता हूँ ?

"पूछो भाई।"

"क्या आप मुझे तंजौर भेज सकते हैं ?"

"वहाँ क्यों ? तुम तो मैसूर वाले दिखाई पड़ते हो ना ?"

"आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"मेरी पत्नी मैसूर की है ?"

"हाँ, मैं मैसूर का रहने वाला हूँ किन्तु यह कहने का साहस मुझे नहीं होता।"

"तंजौर क्यों जाना चाहते हो ? क्या अपने देश जाना नहीं चाहते ?"

"नहीं। फिलहाल मैं अपने देश नहीं जाना चाहता। तंजौर कृष्णय्यर तो अच्छी तरह हैं ना ?"

"हाँ, अच्छी तरह हैं। गत सप्ताह संगीत-ऐकेडमी में उसका गाना हुआ था।"

"गाना हुआ था ? मैं कैसा अभागा हूँ ? उनके दर्शन यहीं हो

जात ना ?"

"क्या तुम उनके पास संगीत सीखने जाना चाहते हो ?"

"हाँ, यही मेरा ध्येय है।"

"किन्तु······ ।"

"क्या बात है कहिये, संकोच न कीजिये।"

"वे बड़े भारी विद्वान् आदमी हैं। इधर के लोग उनको साक्षात् त्यागराज भागवतर का अवतार समझते हैं। तुमने अभी-अभी गाना सीखना प्रारम्भ किया होगा। उनके पास जाने से वे सिखलायेंगे या नहीं इसमें सन्देह है।"

"नहीं, नहीं। मैं कुछ संगीत जानता हूँ ?"

"हमारे घर में गाओगे ?"

"क्यों, किसलिए ?"

"मैं तुमको कुछ पैसा दूँगा।"

"उसकी कुछ आवश्यकता नहीं। पैसा नहीं चाहिये। आप सिर्फ गुरुजी के कृपा-कटाक्ष का प्रबन्ध मेरे लिये कर दीजिये।"

"देखो। मैं कृष्णय्यार जी को अच्छी तरह जानता हूँ। तुम अच्छे हो जाओ तो एक दिन मेरे घर में गाओ। तुम्हारा गाना अच्छा हुआ तो मैं भागवत (संगीताचार्य) जी को चिट्ठी लिखकर तुमको उनके पास भेज दूँगा।"

"ठीक। आपका बड़ा उपकार होगा।"

लक्ष्मण को शय्या छोड़कर उठने के लिए एक सप्ताह की आवश्यकता थी। डाक्टर साहब ने कहा, "अभी नहीं चार दिन आराम करो।" लक्ष्मण बोला, कुछ "परवा नहीं। मैं आज रात को ही गाऊँगा।" डाक्टर साहब ने साजिन्दों का प्रबन्ध करके अपने मित्रों को घर गाना सुनने के लिए आने का निमन्त्रण भेज दिया।

लक्ष्मण ने पूछा, "क्या इन सबके सामने गाना पड़ेगा।"

डाक्टर साहब ने उत्तर दिया, "वे सब मेरे समान ही संगीत-प्रेमी ह । गाओ परवा नहीं । संकोच किस बात का? लक्ष्मण ने भैरवी वर्ण गाकर, फिर उसके बाद एक-दो कीर्तन गाकर विस्तार से तोड़ी राग की आलापना की । साजिन्दे रुक-रुक कर धीरे-धीरे अनुसरण कर रहे थे ।

अतिथियों में से एक ने कहा, "कृपा करके जरा पूर्वी तो गाइये ।"

"सिर्फ उस एक राग के लिए क्षमा करें । और कोई-सा भी राग कहिये मैं गाऊँगा ।"

"तो क्या मोहन राग गा सकते हो ?"

लक्ष्मण ने मोहन राग गाया । डाक्टर साहब एक चाँदी की थाली में फल और ताम्बूल तथा पचास रुपये रखकर लाए और बोले, "आपने तो बतलाया ही नहीं था कि आप इतने बड़े विद्वान् हैं । मैंने समझा था कि कोई मामूली गवैया होगा । मुझे क्षमा कीजिये और मेरी ओर से यह यह तुच्छ भेंट स्वीकार कीजिये ।"

"क्षमा कीजिये । मैं तो केवल एक विद्यार्थी हूँ । मुझे पैसे की आवश्यकता नहीं । सिर्फ एक गुरु की कृपा मुझ पर करा सकें तो उसे मैं लाख रुपया देने से भी अधिक समझूँगा ।"

डाक्टर साहब ने कहा, "गुरु-कृपा अवश्य प्राप्त होगी ।"

डाक्टर साहब की पत्नी बोली, "भैया, गुरु से विद्या सीखकर लौटते वक्त तुम हमारे घर आकर गाना । तुम्हारा ही घर है ।"

लक्ष्मण का हृदय कन्नड देश की स्त्री की आदर की बातें सुनकर आनन्द से खिल गया । उसने वचन दिया, "हाँ, माता जी ! यह मेरा ही घर है । आपके पति मेरी माता शारदा देवी की सेवा कर रहे हैं । माई जी, आप ही मेरे बन्धु-बान्धव हैं । आऊँगा माता जी ! अवश्य ही आकर आपके सामने गाकर जाऊँगा ।"

डाक्टर साहब ने लक्ष्मण के लिए आवश्यक वस्त्रों आदि का प्रबन्ध करके अनन्ताचार्य जी के लिए चिट्ठी लिखकर दे दी और उसको

तंजौर भेज दिया। लक्ष्मण चिट्ठी को हाथ में पकड़कर बस में जा बैठा। वह चिट्ठी को बार-बार छूता था और तमिल अक्षरों में लिखे हुए पते को निर्निमेष दृष्टि से देख रहा था और डाक्टर साहब तथा उनकी पत्नी को कोटिशः धन्यवाद दे रहा था। वह सोच रहा था, 'मैं आश्रयहीन परदेशी की तरह यहाँ आया था। मुझे कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। यहाँ आकर मेरे भाग्य का द्वार खुल गया। मुझे आत्मीय बन्धु मिल गये।'

इसी समय उसे अपने बड़े भाई की याद आई। वह सोचने लगा, 'ये डाक्टर साहब मेरे बड़े भाई होकर क्यों न पैदा हुए? इन डाक्टर की पत्नी को मेरी भाभी होना चाहिये था। तब—तब—मेरी जया बच जाती?"

दुःख ने उसकी देह को हिला दिया।

पच्चीस

तंजौर कृष्णय्यर दक्षिणादि संगीत (दक्षिणी संगीत) के प्रसिद्ध विद्वान् थे। संगीत-शास्त्र और कला दोनों में ही उन्होंने कमाल प्राप्त किया था। उनकी गुरु-परम्परा ने भी इसमें बड़ी सहायता की थी। पुष्पवनम् तथा नायनापिल्ले-जैसे महान् संगीताचार्य उनके सहपाठी थे और उनके साथ एटयापुरम् रामचन्द्र भागवतर से संगीत-विद्या सीखने का सौभाग्य अय्यर महोदय को प्राप्त हुआ था। पुष्पवनम् और नायनापिल्ले की तरह अपूर्व रागों के गाने में और लयकाल के विन्यास में कृष्णय्यर महोदय का गाना भी नामी था। क्योंकि कृष्णय्यर के गुरु त्यागराज के समकालीन और मित्र थे इसलिए उनके शिष्यों को भी संगीत-संसार में विशेष आदर प्राप्त होता था। उनका संगीत पंडितों को भी बहुत प्रिय था, इसलिए विद्वन्मंडली अय्यर महोदय को महाभागवतर कहकर पुकारती थी।[1]

लक्ष्मण जब महाभागवतर के घर पहुँचा तो वे भोजन समाप्त करके पान चबा रहे थे। लक्ष्मण ने बाहर की ड्योढ़ी में खड़े होकर पुकारा, "महाराज!"

"कौन है भाई?"

तब भीतर की ड्योढ़ी में जाकर

"महाभागवतर जी का घर यही है क्या महाराज?"

"हाँ, उनसे क्या काम है?"

---

१. भागवतर दक्षिण देश में संगीताचार्य को कहते हैं।

"जरा उनसे मिलना है। उनके लिए मद्रास के अरुणाचलम् मुदलियार ने एक चिट्ठी दी है।"

"मैं ही भागवत हूँ। चिट्ठी कहाँ है ? लाओ दो !"

लक्ष्मण पल-भर निर्निमेष दृष्टि से भागवत जी को देखता रहा। उसने उनको साष्टांग नमस्कार करके चिट्ठी उनके हाथ में दी। भागवत जी ने चिट्ठी एक बार पढ़ी, उसके बाद पत्नी को बुलाकर उनको पढ़कर सुनाई। लक्ष्मण ने आँख भरकर गुरु को देखा। वे ठिगने थे। कुछ भरा हुआ शरीर था। पेट कुछ आगे को निकला हुआ था। कुंकुम, चन्दन आदि से अलंकृत चौड़ा मुख था। कानों में हीरे का कर्णफूल, गले में सोने के तार में पिरोई हुई एक रूद्राक्ष माला थी, और उँगलियों में दो हीरे की अँगूठियाँ थीं।

भागवत ने लक्ष्मण को भीतर बुलाकर कहा, "कपड़े उतारकर स्नान कर लो भैया ! यह मेरी पत्नी है। यह लड़का मेरा बेटा सुब्रह्मण्य है।"

लक्ष्मण गुरु-पत्नी को साष्टांग नमस्कार करके बोला, "माता जी मुझे अपना बच्चा समझकर मेरा पालन-पोषण कीजिए। गुरु जी से मुझे विद्या का दान कराइये।"

लक्ष्मण के ये शब्द सुनकर भागवत जी की स्त्री की आँखों में आँसू आ गये।

भागवत जी यह देखकर बोले "भोजन के बाद बात-चीत करेंगे। पहले स्नान कर ले भैया।" यह कहकर उसे सुब्रह्मण्यम् के साथ भेज दिया। लक्ष्मण भोजन करके भागवत के सामने बैठ गया।

"कुछ गाना सीखा है भैया !"

"हाँ गुरु जी !"

"किससे ?"

"अनन्ताचार्य जी से !"

"हाँ ! अनन्ताचार्य जी से ! मैं उनको जानता हूँ। मुदलियार जी लिखते हैं कि तुम बहुत अच्छा गाते हो।"

"यह उनका प्रेम है गुरु जी ! मैं तो वस्तुतः मूर्ख आदमी हूँ। मैं आपकी दया से मनुष्य बनना चाहता हूँ।"

"तुम रात को गाना। हम सुन करके उसके बाद पाठ आरम्भ करेंगे। कुछ विश्राम कर लो। शाम को सुब्रह्मण्य के साथ जाकर शहर और मन्दिरों की सैर कर आना।"

"जो आज्ञा गुरु जी।"

नगर और सब मन्दिरों का चक्कर लगाते-लगाते लक्ष्मण और सुब्रह्मण्य में गाढ़ी दोस्ती हो गई। सुब्रह्मण्य सीधे-सादे स्वभाव का व्यक्ति है। लक्ष्मण की कहानी ने उनके हृदय को पिघला दिया। बातें करते-करते लक्ष्मण कभी-कभी भावावेश में गाने लगता था। यह देख-कर सुब्रह्मण्य ने लक्ष्मण की मित्रता को अपना सौभाग्य समझा।

उस रात को लक्ष्मण ने अपनी सीखी हुई विद्या गुरु को निवेदन की। पहले-पहल लक्ष्मण के गाने के लिए ताल देने वाले सुनते-सुनते चुप बैठे रह गये।

बारह बज गये। गुरु-पत्नी ने कहा, "अब बहुत देर हो गई।" तब गुरु जी ने कहा, "मंगलारती गाओ भाई[१]।"

गाना समाप्त हो गया। थोड़ी देर तक गुरु जी चुपचाप गम्भीरता से बैठे रहे। लक्ष्मण का हृदय यह जानने के लिए आतुर था कि गुरु जी अब क्या कहेंगे।

गुरु जी बोले, "लक्ष्मण, मेरा बड़ा सौभाग्य है कि तू मेरा शिष्य बनकर आया है। तेरी विद्या दैवी है। संगीत-शास्त्र जिस विद्या को सिखलाता है, वह विद्या नहीं हैं। विद्या हृदय से निकलनी चाहिये और हृदय में समा जानी चाहिये। वह तेरे पास है। तुझ-जैसे को विद्यादान

---

१. आरती व मंगलारती सब से अंत में होती है

करने से मेरा जन्म सार्थक हो जायगा।"

गुरु जी के ये शब्द सुनकर लक्ष्मण के मुँह से बात नहीं निकली। उसने कृतज्ञता से गुरु जी और गुरु-पत्नी को नमस्कार किया।

उस दिन से लक्ष्मण भागवतर के घर का ही एक व्यक्ति बन गया। घर के सुख-दुःख में वह भी हिस्सेदार हो गया। वह सच्चे दिल से गुरु जी और गुरु-पत्नी की सेवा करने लगा, और घर का काम-काज सीखने लगा। गुरु-पत्नी अलमेलम्मा के काम का भार थोड़ा-थोड़ा हल्का करने लगा रसोई का ऊपर का काम रोज वही कर देता था। गुरु जी के कपड़े धोने का काम उसने अपने सिर पर ले लिया। गुरु-पत्नी के बाहर बैठने पर महीने में तीन दिन रसोई पकाने की जिम्मेदारी उसने खुशी से अपने ऊपर ले ली। अलमेलम्मा लक्ष्मण को अपना ही बेटा समझती थीं। यदि कभी उदास दिखाई दे, तो जो काम कर रही होती थीं उसे छोड़कर उसे दिलासा देने उसके पास आ बैठती थीं और गुरु जी तथा गुरु-पत्नी को देखकर लक्ष्मण को ऐसा मालूम होता था, मानो उसके अपने ही माता-पिता हों।

महाभागवत शिष्यों के लिए रोज गाया करते थे और साथ में लक्ष्मण से भी गवाया करते थे। बीच-बीच में ऐसा होता कि वे गाना बन्द कर देते। जब लक्ष्मण स्वर डालता और लक्ष्मण बन्द कर देता तो वे उसे आगे ले चलते। इसी प्रकार गुरु और शिष्य रागालापना और स्वर-प्रस्तार में ही सारी रात बिता देते।

भागवत जी ने अपनी कला के सारसर्वस्व-स्वरूप अद्भुत पल्लवियों (ध्रुपदों) को शिष्य को घोलकर पिला दिया। जब शिष्य उन्हें गाता तो वे स्वयं सुनते हुए शाबाशी देते। जब वे स्वयं अपने शरीर की सुध-बुध भूल कर गाते तो शिष्य उनका अनुसरण करके सब गतियों को सीख लेता, यह देखकर उनको बड़ा आश्चर्य होता।

वे गाना गाने के लिए जब कभी बाहर जाते तो अपने साथ में

लक्ष्मण और सुब्रह्मण्य दोनों को ले जाते । भागवत जी सामने गाने बैठ जाते और ये दोनों तम्बूरा लेकर पीछे बैठते । एक-एक आवर्त को शिष्य के लिए गाने को छोड़ देते और शाबाशी देते जाते । भागवत जी के साथ ही लक्ष्मण की कीर्ति भी फैलने लगी ।

कभी-कभी ऐसा होता कि गाने के लिए बुलावा आने पर अपनी जगह अपने शिष्य को ही भेज देते । सारे तमिल देश में लक्ष्मण का नाम घर-घर में फैल गया । बाहर जाने पर लक्ष्मण को जो पैसा मिलता वह उसे गुरु के चरणों में निवेदन करके नमस्कार करता ।

भागवत जी कहते, "वत्स, यह तेरा ही है । तू ही इसे अपने पास रख ।"

तब लक्ष्मण उत्तर देता, "केवल आपका अनुग्रह ही मेरा है । गुरु जी, और कोई वस्तु मेरी नहीं है ।"

महाभागवत जी पूर्वी कृष्णय्यर के नाम से भी प्रसिद्ध थे । पूर्वी राग उनके समान और कोई नहीं गा सकता था । लोग कहते थे कि अय्यर जी पर उस राग की देवी प्रसन्न हुई हैं । यद्यपि पूर्वी राग भागवत जी को बहुत ही प्यारा था तो भी वे उसे कभी-कभी गाते थे ।

भागवत जी के घर में आये यद्यपि लक्ष्मण को एक वर्ष हो गया था, तो भी उसने उन्हें वह राग गाते कभी नहीं सुना था । एक दिन उसने गुरु जी से अपनी इच्छा प्रकट की, "पूर्वी राग गाकर दिखलाइये गुरु जी !"

"उस एक राग के लिए मत कहो वत्स !"

यों कहकर गुरु जी बात आगे चला देते ।

एक दिन अलमेलम्मा ने भी शिष्य की वकालत करते हुए कहा, "कितने दिन से लक्ष्मण की पूर्वी सुनने की इच्छा है । वह गाना ही नहीं चाहिये क्या ? आज वैसे भी शुक्रवार है । शाम को गा दीजिये !"

"अच्छा आज गाऊँगा ।"

यह कहकर उन्होंने स्वीकार कर लिया ।

शाम को भागवत जी की संगीत-सभा में पत्नी, पुत्र और शिष्य ये तीन ही श्रोता थे ! पहले कुछ कीर्तन गाकर उन्होंने पूर्वी राग गाना प्रारम्भ किया। राग-विस्तार अद्भुत था, संचार विलक्षण था। संध्या-राग की गहन गम्भीरता गाने में दिखाई दे रही थी ।

पूर्वी राग समाप्त करके वे बोले, "लक्ष्मण यह पूर्वी है, किन्तु संध्या-राग पूर्वी नहीं है। सचमुच मैं यह राग गाना नहीं जानता। राग हृदय में से ऐसे फूटकर निकलना चाहिए जैसे भूमि को फोड़कर उसमें से पानी का सोता निकलता है। पूर्वी हृदय में से नहीं दिमाग से आती है। मैंने तुमको स्वर-माला दे दी हैं। मेरी इच्छा के अनुसार तू कभी गाना। तब मैं पावन हो जाऊँगा तब मैं मुक्त ऋण हो जाऊँगा वत्स, मैं तुझसे यही गुरु-दक्षिणा चाहता हूँ ।"

लक्ष्मण ने "जो गुरुदेव की आज्ञा" यों कहकर सिर झुका लिया।

अब उसका गुरुकुलवास पूरा हो गया। गुरु जी ने "अब तू स्वतन्त्र है, जो कुछ मुझे सिखलाना था, मैं सिखला चुका" यों कहकर उसे जाने की अनुमति दे दी ।

लक्ष्मण का मन खिन्न हो गया, हृदय भारी हो गया। वह सोचने लगा, 'ऐसे आदमी को छोड़कर कहाँ जाऊँ ?'

तब गुरुजी ही बोले, "तेरी विद्या दैवी है। उसको सत्पात्र को दान कर। तेरे प्रकाश से कितने ही हृदय प्रकाशित होते हैं। उन्हें प्रकाशित कर। सारे संसार को अन्धकार कूप से रक्षा कर ।"

लक्ष्मण ने उत्तर दिया, "यह तो आपने बहुत बड़ी बात कही गुरु जी ! मैं तो आपकी मशाल को उठाने वाला मशालची-मात्र हूँ ।"

लक्ष्मण चलने को तैयार हुआ। अलमेलम्मा ने रास्ते के लिए भोजन बांधकर लाकर हाथ में दिया ! सुब्रह्मण्य की आँखों से लगातार अश्रु-धारा बह रही थी। गुरु जी उमड़ आते हुए दुःख को रोककर धीरज धारण किये हुए थे। गाड़ी वाले ने जल्दी मचानी शुरू की। तब लक्ष्मण ने गुरु और गुरु-पत्नी के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया।

अलमेलम्मा स्वयं आँसू बहा रही थीं और लक्ष्मण की आँखों से अपने आँचल से आँसू पोंछती हुई उसे धीरज बँधाती हुई बोलीं, "वत्स, रो मत। जाकर आ। तू कहीं भी हो, तेरी रक्षा करने वाले भगवान् हैं।"

सुब्रह्मण्य ने आकर लक्ष्मण को आलिंगन किया। लक्ष्मण धीरे से उसके बाहु-पाश से मुक्त होकर गाड़ी में जाकर बैठ गया।

रात को डाक्टर साहब जब अपने घर लौटे तो अपने अतिथि को देखकर उन्हें आनन्द के साथ आश्चर्य भी हुआ।

"लक्ष्मणराव, तुमने एक चिट्ठी भी नहीं लिखी कि मैं अमुक दिन अमुक गाड़ी से आऊँगा।"

"आपको व्यर्थ कष्ट क्यों देता ? अपने ही घर आने के लिए चिट्ठी लिखने की क्या आवश्यकता थी ? इसीलिए नहीं लिखी।"

डाक्टर साहब और उनकी पत्नी को अपार आनन्द हुआ।

भोजन करते समय लक्ष्मण ने डाक्टर की पत्नी से कहा, "माता जी, आपने मुक्त हस्त से मेरी सहायता करके गुरु जी के पास भेजा था। मैं अब विद्याभ्यास समाप्त करके लौट आया हूँ। अब आपके चरणों में उसे अर्पण करना है।"

"तुम हमारे पास आये यही हमारे लिए बड़े गौरव की बात है। तुम बड़े हो। तुमने अपने बड़प्पन के अनुकूल ही बात कही है। हम इस योग्य कहाँ हैं ?"

"ऐसा मत कहिये माता जी ! मैं सच्चे दिल से कह रहा हूँ। आपने और डाक्टर साहब ने मेरे शरीर और आत्मा दोनों की रक्षा की।

डाक्टर साहब के प्रभाव से मद्रास के संगीत-समाजों ने लक्ष्मण की संगीत-सभाएँ रखने के लिए बड़ी उत्सुकता प्रदर्शित की। अनेक जगह गाना हुआ। बड़े-बड़े कला-प्रेमियों के घरों में भी गाना हुआ। जिस अखबार को भी देखो उसीमें लक्ष्मण और उसके गाने की प्रशंसा में लेख छप रहे थे।

लक्ष्मण का मन मद्रास से ऊबने लगा। सभा, समाज, स्तुति, शोर, शर इनसे उसकी तपस्या में विघ्न होता था। मद्रास में वह कहीं भी जाये, लोग उसको पहचानते थे। एक दिन वह समुद्र-तट पर बैठा हुआ अपने तन की सुध-बुध भूलकर लहरों का उठना और गिरना देखने में मग्न था। तब वहाँ किसी ने उसे पहचान लिया और एक भीड़ लग गई। उससे बचकर घर पहुँचना कठिन हो गया। उसी दिन उसने डाक्टर साहब से कहा, "मैं आपसे आज्ञा लेकर अपने गाँव को जाना चाहता हूँ।"

"जल्दी क्या है लक्ष्मण राव ? अगले महीने संगीत-एकेडेमी संगीत-सप्ताह का आयोजन कर रही है। उसके बाद चले जाइयेगा।"

"नहीं, जरूरत हो तो फिर आजाऊँगा अब कृपा करके आज्ञा दीजिये।" इन शब्दों के साथ लक्ष्मण ने बड़ी दीनता से प्रार्थना की।

डाक्टर और उनकी पत्नी को लाचार होकर स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने लक्ष्मण राव के सम्मान में एक दावत का प्रबन्ध किया। संगीत-सभाओं में जो पैसा इकट्ठा हुआ था, डाक्टर साहब उसे देने लगे।

लक्ष्मण ने पूछा, "कितना है ?"

"एक हजार छै सौ पचास।"

"इतना हो गया !"

"हम ध्यान देते तो इसका चौगुना हो जाता।"

"मेरे लिए पचास रुपये पर्याप्त हैं।"

"बाकी का क्या करूँ ?"

"तंजौर में हमारे गुरु जी को भेज दीजिये।

"अच्छा।"

यों कहकर डाक्टर साहब ने उसका भार अपने ऊपर ले लिया। डाक्टर साहब और उनकी पत्नी से विदा लेकर लक्ष्मण बंगलौर की गाड़ी में बैठ गया।

'कहाँ जाना है ?'

'बंगलौर !'

"वहाँ जाकर क्या करना है ?

'क्या करना है ???'

यही प्रश्न बार-बार उसके मन में उठ रहा था। बंगलौर का नाम लेते ही पुरानी सब स्मृतियाँ आकर उसकी आँखों के आगे नाचने लगीं। उसने सोचा, 'माता, पिता, जया, इनसे रहित बंगलौर को लेकर मैं क्या करूँगा।'

उसके साथ ही वेंकटेश और शान्ता की याद आई। मन उनको देखने के लिए आतुर होने लगा। उसके साथ ही बड़े भाई और भाभी की याद आई। उनके मुँह से निकले हुए शब्द बादल की गर्ज की तरह एक-एक करके स्मृति-पथ में आने लगे। ऐसा मालूम होता था कि जया पर जो-जो आपत्ति आई वह सब अभी घटित हुई है। उद्वेग से लक्ष्मण का देह काँपने लगा।

'नहीं, नहीं। उनका मुँह मैं फिर नहीं देखूँगा। बंगलौर—बंगलौर नहीं चाहिए। गाड़ी के बंगलौर पहुँचते ही मैं मैसूर का टिकट लेकर चल दूँगा।'

उसने यह निश्चय कर लिया।

उन्तीस

रामचन्द्र की अदालत झगड़े के लिए प्रसिद्ध हो गई थी। उसकी अदालत में जो वकील जाते थे, वे चाहे नये हों या पुराने, उससे लड़े बिना आते ही नहीं थे। वकील को यह कहने का अवसर ही नहीं मिलता था कि मुवक्किल का पक्ष क्या है। मजिस्ट्रेट को अगले मुकदमे पर जाने की जल्दी लगी रहती थी। मजिस्ट्रेट को यह दिखलाने की आतुरता के कारण कि मैंने सबसे अधिक मुकदमों का फैसला किया, मुवक्किल और वकील पिस जाते थे।

मैजिस्ट्रेट के आक्षेप करते ही वकील कह देते थे, "हजूर, जो चाहे वह निर्णय कर सकते हैं। हम इस मुकदमे का ट्रांसफर दूसरी अदालत को करने के लिये अर्जी दे रहे हैं।"

रामचन्द्र की अदालत असन्तोष का घर बन गई थी। रोज मजिस्ट्रेट के विरुद्ध शिकायतें हाईकोर्ट को जाती ही रहती थीं। इस तरह शिकायतें करने वाले वकील जब उसकी अदालत में आते तो रामचन्द्र उनको मनमानी गालियाँ देकर अपना गुस्सा उतारता। सब लोग रोज-रोज रामचन्द्र की अदालत की हँसी उड़ाते।

सहकार-समितियों और बैंकों का काम हाथ से निकल जाने पर रामचन्द्र को उनसे होने वाली आय बन्द हो गई। उसको जो वेतन मिलता था, उससे वह अपना घर का खर्च भी मुश्किल से चला पाता। कभी-कभी जान-पहचान वाले वकीलों की दया से एक-दो नोटों की गड्डियाँ हाथ लग जातीं। धीरे-धीरे उसीको उसने अपनी अदालत का क्रम बना दिया। कभी-कभी ऐसा होता कि दोनों पक्षों

से वह पूजा स्वीकार कर लेता और जिधर से अधिक मिलता उसीके पक्ष में फैसला करता।

मजिस्ट्रेट की यह भावना होती है कि फौजदारी मुकदमों में न्याय हमेशा पुलिस के पक्ष में रहता है। रामचन्द्र की अदालत का बड़प्पन इसीमें था कि वह अभियुक्त को ग्यारह बजे आने को कहकर साढ़े चार बजे फैसला सुनाता था। वह अदालत के उठने के समय फैसला सुनाता था जिससे कि अभियुक्त को जमानत पर छुड़ाने के लिए सेशन अदालत में अर्जी देकर उसको छुड़ाकर उसी दिन घर ले जाना वकील के लिए असम्भव हो जाता। निरपराध अभियुक्तों को अनावश्यक एक रात जेल में बितानी पड़ती।

यह सब खबरें जब-तब सब अखबारों में छपती रहतीं, किन्तु 'वीर कर्नाटक' में अधिक खबरें पूरे ब्यौरे के साथ प्रकाशित होतीं। पत्र के अदालती स्तम्भ में मुकदमे का विवरण और फैसला सब ब्यौरेवार छपता। जो सामान्य पाठक कानूनी नियम-कायदों को नहीं जानते थे वे भी इस न्याय-विचार की रीति को अवहेलना की दृष्टि से देखने लगे।

रामचन्द्र सोचता था कि ये सब खबरें इतने ब्यौरे के साथ अखबार वालों को कैसे मिल जाती हैं। उसके मन में विचार आया कि 'वीर कर्नाटक' के सम्पादक को बुलाकर उनसे कहूँ कि ऐसी खबरें प्रकाशित न करें। फिर सोचा कि ऐसा न हो कि बुला भेजने की खबर ही प्रकाशित कर दें। रामचन्द्र बड़े संकट में पड़ गया। कोई रास्ता नहीं सूझता था।

रामचन्द्र सोच ही रहा था कि 'क्या करूँ' कि 'वीर कर्नाटक' में समाचार छपा कि एक मजिस्ट्रेट ने एक फैसला लिखा और उसके बाद दूसरे पक्ष वालों की पूजा के सामने सिर झुकाकर फैसले को रद्द कर दिया और एक दूसरा फैसला लिखा। अखबार वालों ने उस मुकदमे

का सारा ब्यौरा हाईकोर्ट को भेजकर यह भी लिखा था कि यदि हाई-कोर्ट इस मामले की जाँच आरम्भ न करे तो हम मजिस्ट्रेट का नाम-धाम सब प्रकाशित कर देंगे। हाईकोर्ट के अधिकारियों ने रामचन्द्र के सब व्यवहार की जाँच प्रारम्भ कर दी थी। इसलिए रामचन्द्र को दो मास की छुट्टी लेनी पड़ी।

रामचन्द्र जब छुट्टी लेकर घर में बैठ गया, तब ही गोपाल को अखबार में मजिस्ट्रेट के विषय में छपने वाले समाचारों का रहस्य मालूम हुआ। इन सब समाचारों के 'वीर कर्नाटक' में छपने से उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि इसके पीछे वेंकटेश का हाथ कुछ-न-कुछ जरूर होगा। उसने सोचा कि पहले भाई से बातचीत करके उसके बाद वेंकटेंशय्या से मिलूँगा। किन्तु भाई से पूछना कैसे ? उसने निश्चय किया कि किसी-न-किसी तरह भाई से पूछना ही चाहिए।

रामचन्द्र अब आकाश से भूमि पर उतर आया। उसने समझ लिया कि यह बड़ी भूल की कि इस अखबार के मामले को इतनी दूर तक बढ़ जाने दिया। वह सोचने लगा 'अब आगे क्या उपाय है ? मामला हाइकोर्ट तक पहुँच गया है। नौकरी चले जाने का भय है। तब क्या दशा होगी ?' उसको भोजन नहीं पचता था और नींद नहीं आती थी। वह सोचने लगा कि मेरे वास्ते क्या कोई कष्ट नहीं उठा सकता। किससे प्रार्थना करूँ ?' जो उसके सच्चे हितैषी बंधु हो सकते थे। और कष्ट में उसका साथ दे सकते थे, वे उसके दुर्व्यवहार से तंग आकर उससे दूर भाग गये थे। और मित्र लोग—सच्चे मित्र कोई थे ही नहीं, यह सोचकर उसे बड़ा दुःख हुआ। सब लोग किसी-न-किसी कारण से किसी विशेष समय पर उसके पास आये थे। अब उनमें से कोई भी पास नहीं फटकता था। वह सोचने लगा, 'मेरा अधिकार, धन, दर्प, क्या ये सब निरर्थक ही थे ?'

रामचन्द्र का दुःख देखकर उस पर दया आती थी और वह उसके

अवगुणों को भुला देती थी।

गोपाल ने उसे सान्त्वना देने का साहस किया वह बोला, "बड़े भय्या !"

"गोपू, क्या बात है ?"

"एक बात है। आप कहें तो पूछूँ"

"पूछो !"

"वीर कर्नाटक' में जो-कुछ छपा है, वह सब सच है क्या ?"

"गोपू, उस सबसे मुझको कुछ मतलब नहीं। तुम उसे पढ़कर छोड़ दो !"

"मैंने इसीलिए पूछा था कि उसका सम्बन्ध मुझसे है। उस पत्र के विषय में मुझे दो-चार बात मालूम हैं।"

"क्या बातें हैं। बताओ तो सही।"

"पहले मेरे प्रश्न का उत्तर मिल जाय तो बताऊँ।"

रामचन्द्र बड़े संकट में पड़ गया। उसको बड़ा दुःख हुआ कि अब अपना सब दुष्कर्म भाई के सामने स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु और कुछ चारा नहीं था। 'आपत्काले मर्यादा नास्ति।'

"सच है गोपू। मैंने अविवेक का काम किया था। 'वीर कर्नाटक' की क्या बात है ?"

गोपू को बड़ा दुःख हुआ। भैया की विद्या, गौरव, संस्कृति, अधिकार सबका अन्त क्या इसीमें हुआ ? जीवन चरित्रहीन और नीतिहीन होना चाहिये क्या ? क्या केवल पैसा कमाना ही जीवन का लक्ष्य है ? ये सब विचार उसके मन में उठने लगे।

"गोपू, 'वीर कर्नाटक' के बारे में क्या बात है ?"

"उस पत्र में और बहनोई वेंकटेश में कुछ सम्बन्ध है।"

"हाय ! ऐसी बात क्या है ?"

"ऐसी बात क्या, वही उसका मालिक है। सम्पादक अनन्तराव

उसके नौकर-मात्र हैं।"

"ऐसी बात है तो मैं बरबाद हो गया !"

"ऐसी बात क्यों कहते हैं ?"

"वेंकटेश ने, बहुत दिन हुए, एक बात कही थी—आज उसका हाथ ऊपर है। मैंने उसको घर से निकाल दिया था—आज वह मेरी नौकरी छुड़वा रहा है।"

"इसके लिए क्या किया जाय ?"

"क्या किया जाय, यह तुम ही बतलाओ। इधर खाई है और उधर पहाड़ है।"

"एक बार आप वेंकटेश जीजा जी से क्यों नहीं मिलते हैं ?"

"क्या लाभ ?"

"वे इस मामले को इस तरह निपटा सकते हैं कि आप पर आँच न आये।"

"हाँ यही मेरे भाग्य में है—मुझे वेंकटेश से दया की भीख माँगनी पड़ेगी !"

"नहीं तो क्या नौकरी से हाथ धोयेंगे ?"

"यह मामला वेंकटेश के हाथों से भी परे चला गया है। अब हाई-कोर्ट के हाथों में पहुँच चुका है। उसने जाँच आरम्भ कर दी है।"

"दोनों पक्ष आपस में समझौता करके मामले को वापस ले लें तो ?"

"हाँ यह सम्भव है, किन्तु यह करायेगा कौन ?"

"वेंकटेश जीजा !"

"उसके पैर पकड़ने का समय आ गया ?"

"अपनी छोटी बहन के घर जाने में आप इतना सोच-विचार करते हैं।"

रो-धोकर अन्त में रामचन्द्र ने वेंकटेश से मिलने का निश्चय किया ! धन, अधिकार और दर्प से विराट् रूप धारण किये हुए शरीर

ने अब घटते-घटते कुब्जावतार धारण कर लिया था। उसके मन में बड़ा दु:ख था। वह सोच रहा था कि वेंकटेश की बात सच हो गई ना।

रामचन्द्र रेल से उतरकर सीधे माडर्न हिन्दू होटल गया। वहाँ सामान रखकर, स्नान और जल-पान करके वेंकटेश के घर को चला। रामचन्द्र भैया को अपने घर में आता देखकर शान्ता को बड़ा आश्चर्य हुआ। शान्ता भैया के लिये काफी बनाकर लाई और बोली, "रामू भैया, सामान कहाँ ह ?"

"होटल में रख आया हूँ, बहन !"

"क्यों ? यहाँ क्यों नहीं लाये ?"

"जरा जल्दी थी ? ज्यादह देर नहीं ठहर सकूँगा। वेंकटेश कहाँ है ?"

"सबेरे उठते ही कहीं चले गये हैं।"

"कब आयेगा ?"

"मालूम नहीं। कभी-कभी भोजन करने भी नहीं आते।"

रामचन्द्र की आशा जाती रही। मुँह फीका पड़ गया।

"क्यों भैया ? क्या अभी मिलना था ?······क्या मामला है ? तुम इतने उतर क्यों गये हो ? क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं हैं ?"

"कुछ नहीं हुआ शान्ता ! तुम्हारे पति को मुझ पर एक उपकार करना चाहिए।"

"उपकार ? तुम पर ? वे क्या कर सकते हैं ? हम तो गरीब आदमी हैं ?"

"शान्ता बहन, मेरी जान पर बन आई है। 'वीर कर्नाटक' नहीं पढ़ा क्या ? मेरी नौकरी चले जाने की नौबत आ गई है।"

"इसके लिए वे क्या कर सकते हैं ?"

"वेंकटेश चाहें तो पत्र में चार अच्छी बातें लिख सकता है। मेरे विरुद्ध जिन्होंने हाईकोर्ट में शिकायत की है, उन्हें समझा-बुझा-

कर उनसे आपस में समझौता करा सकता है।"

"उनमें और इस मामले में क्या सम्बन्ध है ?"

"इस समय उसका हाथ ऊपर है शान्ता ! मैं नीचे गिरा हूँ।"

"एक दिन वे भी नीचे गिरे पड़े थे ना ? तब तुमने निर्दाक्षिण्य होकर उनको घर से बाहर धकेल दिया था ना ? अब तुम उन्हींसे उपकार की आशा कैसे रख सकते हो ?"

"तू मेरी बहन होकर ऐसी बात कहेगी ?"

"बहन—तुम्हारा कोई बहन, भाई, पत्नी, पुत्र नहीं है। धन, अधिकार, दर्प यही तुम्हारा सम्पूर्ण साम्राज्य है।"

"शान्ता, मैं महा अपराधी हूँ। तुम सबसे ही मैंने महा अनीति का बर्ताव किया है। मुझे क्षमा करके बचाओ !"

इस तरह बड़ी दीनता से रामू ने प्रार्थना की। शान्ता के शान्त मुख पर रामचन्द्र का पहला चरित्र चित्रित था। लक्ष्मण और जया के जीवन की स्मृति ने उसके हृदय को पाषाणवत् कठोर बना दिया। उसका मन कटुता के साथ कह रहा था, 'सबकी कब्रों के ऊपर वह अपना साम्राज्य बनाना चाहता था। सब भाड़ में जायँ, अकेला मैं ही जीता रहूँ, तो काफी है, यही उसकी प्रबल इच्छा थी।......अब उसके भाड़ में जाने की बारी है। जाने दो भाड़ में। इससे लोक-कल्याण ही होगा।' फिर अगले ही क्षण अन्तःकरण की आवाज उठी, 'मेरा भाई है ना ? अविवेक से यदि वह दूसरों को सताये तो हमको भी उसे सताना चाहिये क्या ? हिंसा से वह बड़ा हुआ है, क्षमा से हम छोटे भी हो जायँ तो परवा नहीं।'

शान्ता का मन इस अन्तर्द्वन्द्व में ही फँसा था कि वेंकटेश घर लौट आया। रामचन्द्र को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। रावसाहब के घर में वह घटना होने के बाद आज ही प्रथम बार उन दोनों में साक्षात्कार हुआ था। उसके घर में आया था ना, इसलिए वेंकटेश ने ही

पहले बातचीत शुरू की।

"कब बंगलौर आए भाई ?"

"आज सवेरे ही।"

"घर में सब कुशल-मंगल है ना ?"

"हाँ, सब कुशल है।"

"अब कैसे आये ? क्या अदालत की छुट्टी है ?"

"नहीं, कुछ काम से आया हूँ।"

वेंकटेश अच्छी तरह जानता था कि वह काम क्या है।

यह देखकर कि वेंकटेश कुछ नहीं बोला, रामचन्द्र ही बोला, "वेंकटेश, 'वीर कर्नाटक' पत्र तुम्हारा है ?"

"हाँ, तुमसे किसने कहा था ?"

"ऐसे ही मालूम हुआ था। तुम्हारा पत्र ही मुझको इस तरह कीचड़ में घसीट रहा है।"

"कोई झूठी बात तो नहीं लिखी। जो-कुछ लिखा है, वह झूठ हो तो अदालत है, सरकार है। अखबार बन्द किया जा सकता है।"

"सच भी हो तो क्या तुमको वह बात छापनी चाहिये थी ?"

"क्यों नहीं छापनी चाहिये ? अधिकार के मद से तुम मनमाना अन्याय कर सकते हो। उसका समाचार अखबार में नहीं छापना क्या ?"

"मैंने क्या अन्याय किया ?"

"दो फैसले लिखे—दोनों पक्षों से पैसा लिया—तुम्हारे विषय में आने वाले कागज-पत्र के लिए हमको एक अलग फाइल ही खोलनी पड़ी है। कल अदालत में जाना पड़े तो हमको अपना सिर बचाना है ना ?"

"इससे मेरी क्या गति होगी, यह भी सोचा है ?"

"हाँ, सोचा है। नौकरी से डिसमिस हो सकते हो।"

"क्या तुम्हें यह अभीष्ट है ?"

"हाँ, बिल्कुल अभीष्ट है। मुझे भी अभीष्ट है और समाज के लिए भी अभीष्ट है। तुम्हारे अधिकार-दर्प के रथ के पहियों के नीचे पिसकर कितने लोग बरबाद हो गये, यह जानते हो ? हाथ में अधिकार होने से तम लोगों को सताना शुरू कर दोगे तो यह अन्याय कितने दिनों तक चल सकता है ? तुमने मुझको ठुकराया। रावसाहब अपने देवोचित स्वभाव से मुझको जो भोजन देते थे, तुम उसमें पत्थर मिलाते थे। फिर घर से निकाल बाहर किया। कटु वचनों से अपने छोटे भाई की पत्नी की आहुति दे दी। उसको उद्देश्यहीन भटकने वाले भिखमंगे-जैसा बना दिया। जिस माता ने पेट में रखा और जन्म दिया, उसीको आँसुओं की नदी में स्नान करने वाली बना दिया। अब अधिकार तुम्हारे हाथों में है। तुम बड़े मजिस्ट्रेट हो। बाकी सब लोगों को तुम जेल भेज सकते हो, और भेजते भी हो। जो घूस नहीं देता, उसकी जान लेते हो। तुम्हारी शुक्र दशा अब क्या हो गई है ?............शनि दशा।"

"ठीक है। ठीक है, वेंकटेश ! तुम जो कुछ भी कह रहे हो, वह बिल्कुल सत्य है। किन्तु क्या मुझ पर दया नहीं दिखा सकते हो ? मेरे सब अपराधों को क्षमा करक मुझे बचा नहीं सकते क्या ?"

"तुम पर मुझको बिल्कुल दया नहीं, करुणा नहीं, रहम नहीं। मुझे मालूम था कि एक दिन तुम ऐसे झञ्झट में फँसोगे। मुझे मालूम था कि मुझको तिनके से भी तुच्छ समझने वाले तुम एक दिन घुटने टेककर मुझसे दया की भीख माँगोगे। तब तुम्हारा समय था, अब मेरा समय है। मैंने निश्चय कर लिया था कि जब मेरा समय आयेगा तब मैं तुमको अच्छी तरह सबक सिखाऊँगा। अब वह समय आ गया है। तुमको सबक सिखाऊँगा। ऐसा करके दिखा दूँगा कि तुम अपना पुराना साइनबोर्ड ढूँढते फिरोगे। ज्यादा ठहरने के लिए मुझे फुरसत

नहीं है।" यह कहकर वेंकटेश बाहर चला गया।

रामचन्द्र को सूझा नहीं कि क्या कहे। डर के मारे चेहरा पीला पड़ गया और माथे पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। शरीर थर-थर काँपने लगा।

"बहन, मैं चलता हूँ। हो सके तो अपने पति से एक बार और कहकर देखना।"

शान्ता ने जवाब दिया, "अच्छा भैया!" रामू की दयनीय दशा देखकर उसकी आँखों में आँसू आ गये।

दोपहर को वेंकटेश का भोजन होने के बाद पान का बीड़ा बनाते हुए शान्ता ने धीरे से बात उठाई, "रामू भैया के मामले में क्या करोगे?'

"कैसे रामू भैया?"

"कौन रामू भैया? तुम्हारा साला है ना रामू?"

"मेरे मन में रामू भैया इस नाम की भावना ही नहीं।"

"हँसी बहुत हो चुकी। अब बतलाओ ना!"

"जो कुछ बतलाना था, वह सब मैंने सवेरे ही बतला दिया ना।"

"वह बिल्कुल बरबाद हो रहा है ना?"

"हाँ, नौकरी जा रही है।"

"तुम बचा सकते हो। क्यों नहीं बचाते?"

"क्यों बचाऊँ? क्या इसलिये कि वह दूसरों का घर बरबाद करने के अपने पवित्र काम को जारी रख सके? तो ऐसी धर्म-बुद्धि मुझमें नहीं है।"

"उसने गलती की है। उसे सुधारने का मौका जब तुमको है तब तुम क्यों न उसे सुधारो?"

"यह सुधारने का नहीं, बदला लेने का मौका है। इस समय उसकी जगह पर मैं और मेरी जगह वह होता तो वह क्या करता,

जानती हो ?"

"जानती हूँ।"

"वही अब मैं भी कर रहा हूँ।"

'तुम कह सकते हो कि वह मेरा साला नहीं है। पर मैं कह सकती हूँ क्या कि वह मेरा भाई नहीं है ?"

"हाँ कह सकती हो, कहना चाहिए। क्या समझती हो कि मैं भूल जाऊँगा कि उसने तुमको कितना सताया है ?"

"मैं तो उसे भूल गई हूँ।"

"तुम बड़ी उदार हो। किन्तु मैं नहीं भूल सकता।"

"उसे जाने दो। मेरे वास्ते तुमको उसे बचाना चाहिये।"

"यह मामला अब मेरे हाथ से निकल गया है। यत्न करने पर भी सफलता नहीं होगी। दोनों पक्षों ने स्वयं ही हाईकोर्ट में शिकायत की है।"

"तुम दोनों पक्षों में समझौता करा सकते हो ना। कुछ-न-कुछ करो जी। मेरे वास्ते इतना करो। तुम्हारे उपकार के लिए ऋणी होने से भी अधिक दंड रामू भैया को मिलना चाहिये क्या ?"

इस बात ने वेंकटेश के मन पर असर किया। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि रामचन्द्र के भविष्य का निर्णय करने की शक्ति मुझमें है ना ? वह पत्नी की बात टाल नहीं सकता था। यद्यपि पहले-पहल प्रतिकार की इच्छा उसके मन में प्रबल थी, तो भी उसको याद आई कि किस तरह वह रावसाहब के घर में जाकर उनके आश्रय में रहा, उनकी कितनी कृपा उसके ऊपर थी। वह रामचन्द्र के लिए प्रयत्न नहीं करना चाहता था, किन्तु उसने रावसाहब की दिव्य स्मृति के लिये प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया।

प्रयत्न सफल हुआ। दोनों पक्ष समझौते के लिए तैयार हो गये। और उन्होंने हाईकोर्ट में दी हुई अपनी अर्जी वापस ले ली। हाईकोर्ट ने

रामचन्द्र के विरुद्ध दूसरी शिकायतों के लिए पाँच वर्ष तक उसकी वेतन-वृद्धि रोक दी और उसका स्थान-परिवर्तन दौडबल्लापुर नामक एक दूरवर्ती छोटे स्थान को कर दिया।

यह समाचार रामचन्द्र को मिला। उसके मन पर से एक भारी बोझ उतर गया। लज्जा से उसने अपना सिर झुका लिया। वह सोचने लगा, 'जिनको मैं बिल्कुल तुच्छ समझता था, उन्हींका इतना भारी एहसान मुझको लेना पड़ा। जिनको मैंने घर से निकाल दिया था, उन्हींने मेरा घर बचाया।' अपना पिछला अधिकार का जमाना याद आया। साथ ही असह्य दुःख उमड़ आया। एक तरफ तो उसे याद आया कि 'मीनाक्षम्मा ने मेरे साथ कैसे-कैसे उपकार किये और दूसरी तरफ मैंने लक्ष्मण और उसकी पत्नी के साथ कैसा अपकार किया।' वह फूट-फूट कर रोने लगा। पश्चात्ताप से पिघलकर उसका मन हल्का हो गया। उसी दिन उसने अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए एक चिट्ठी वेंकटेशय्या को लिखी।

सत्ताईस

मैसूर में वीणाशेषण्णा का घर संगीत-प्रेमियों के लिए एक तीर्थ-स्थान था। वे वीणा बजाने में पक्के उस्ताद थे, इसलिए वीणाशेषण्णा के नाम से प्रसिद्ध थे, और उनको 'वैणिक-शिखामणि' की उपाधि मिली थी। वे स्वयं प्रतिभाशाली संगीतज्ञ होने के अलावा संगीत-कला के रक्षक और पोषक भी थे। उनका घर एक संगीत-विश्वविद्यालय की तरह था। वहाँ पर सदा संगीत का अभ्यास, चर्चा और पाठ-प्रवचन होते रहते थे। शेषण्णा जी का स्वभाव बच्चे-जैसा था। यदि-कोई उनसे जाकर वीणा सुनने के लिए कहता तो वे झट वीणा बजाकर उसे मुग्ध कर देते।

शेषण्णा जी मैसूर के राज-महल म बख्शी पद को सुशोभित करते थे। महाराज के सामने कोई कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करता तो उसे पहले शेषण्णा जी की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। बाहर से आने वाले संगीतज्ञ विद्वान् लोग इसे परीक्षा न समझकर बड़ी खुशी से शेषण्णाजी के सामने गाकर उनके विश्वास-भाजन बनते। उनके घर के संगीतोत्सव सार्वजनिक बन जाते थे, क्योंकि उनमें सबको आने की अनुमति होती थी और इतनी भीड़ होती थी कि कि साँस लेने के लिए वायु भी बाहर से न आ सकती थी। खिड़की और दरवाजों तक में भी लोग भर जाते थे।

समाचार फैला कि पालघाट के कोई बड़े भागवत जी (संगीताचार्य) आये हैं और शेषण्णा जी के घर में उनका गाना होगा। हमेशा की तरह उनके घर में भीड़ लग गई। राज-महल के अफ़सर, सरकारी

अफ़सर, मंडी के सेठ लोग, संगीतज्ञ विद्वान् लोग, कालेजों के प्रोफेसर और विद्यार्थी आकर इकट्ठे हो गये। पहले चार शब्दों में वकील सुब्बराय जी ने भागवतजी का परिचय कराया। वकील सुब्बरायजी उन लोगों में से थे जो शेषण्णाजी के घर की संगीत-सभाओं में आने से कभी न चूकते थे। उनकी फूलदार पगड़ी, काला लम्बा कोट, आजानु-बाहु देह और भारी आवाज को कोई कभी भूल नहीं सकता था। सुब्बराय जी गाना नहीं जानते थे। उनको संगीत की अपेक्षा संगीताचार्यों से अधिक प्रेम था। वे संगीतचार्यों से प्रेम बढ़ाते, सबसे उनकी प्रशंसा करते, जहाँ कहीं गाना होता वहाँ जाकर अपनी उपस्थिति से सभा को सुशोभित करते, संगीताचार्यों को अपने घर पर बुलाकर उनका आदर-सत्कार करते, उनको बढ़िया दावत खिलाते और संगीत-सभाओं में उनका परिचय कराते और इसी प्रकार उन्होंने संगीत-संसार में प्रसिद्ध प्राप्त की थी।

सुब्बराय जी ने भागवत जी का परिचय इन शब्दों में दिया, "आप पालघाट के रहने वाले हैं, बड़े भारी संगीतज्ञ-विद्वान् हैं। आपका नाम है पालघाट वेंकटराम भागवतर। आपने बड़ी-बड़ी सभाओं और राज-दरबारों में गाना गाकर खिलअत-सरापा और तोड़े प्राप्त किये हैं।[1] हमारा बड़ा सौभाग्य है कि आज हमको ऐसे महान् कलाकार का गाना सुनने को मिलेगा।"

परिचय के बाद भागवत जी ने तम्बूरे के सुर मिलाना प्रारम्भ किया। आप अधेड़ उम्र के थे। रंग काला था और शरीर पर भस्म लगाई हुई थी। उसे देखकर ऐसा मालूम होता था मानो अमावस्या और पूर्णिमा दोनों एक साथ मौजूद हैं। हाथ में सोने के घुँघरू वाला

---

१. किसी कलाकार संगीताचार्य आदि को उसकी कला का आदर करने के लिए रत्न-जटित बाजूबन्द या कंठा आदि जो आभूषण देते हैं, उसे तोड़ा कहते हैं।

लाल-मणि का कड़ा था, गले में सोने के तार में पिरोई हुई रुद्राक्ष माला थी, कानों में हीरे के कर्णफूल थे, उँगलियों में तीन हीरे और लाल की अँगूठियाँ थीं। उनको देखने से ऐसा मालूम होता था जैसे वे कोई रत्नों का व्यापार करने वाले सर्राफ हो।

तम्बूरे के सुर मिल गये। भागवत जी ने गाना प्रारम्भ किया। खखारकर, गला ठीक करके, बीच-बीच में काली मिर्च मुँह में डालकर उन्होंने अपनी रिषभ ध्वनि से गाना प्रारम्भ किया। 'वातापि गणपति भाजे' यह कीर्तन गाकर, काम्बोधि राग में 'एवरि मार्ट' कीर्तन को, मुरवारी राग में 'जलावतार' कीर्तन को, पन्तुवराली राग को थोड़ी देर अलापकर फिर 'रघुवरननु' यह कीर्तन उन्होंने गाया। भागवत के गले में नाद-सम्पत्ति तो नहीं थी, तो भी उनके गाने के ढंग में एक विशेषता थी। ताल, विराम सब बिल्कुल नियमित थे। स्वर-प्रस्तार राग, कीर्तन भावों को भुला देने पर भी गम्भीरता से सविस्तार थे। श्रोता लोग सिर हिलाकर झूमने लगे। शेषण्णा जी बीच-बीच में शाबाशी देते जाते थे।

उसके बाद भागवत जी ने सविस्तार राग अलापने के लिए तोडी राग को लिया। उनके गाने में इतना गाम्भीर्य दिखलाई दिया कि उसने राग के लक्षण को भी अतिक्रमण कर दिया था। उन्होंने कुछ अंश को मध्यम और धैवत स्वर में बदलकर खूब अच्छी तरह से गाया। उन्होंने पंचम स्वर का उपयोग न आरोह (चढ़ाव) में किया, और न अवरोह (उतार) में।

अलाप समाप्त होने पर भागवत जी के पास बैठे हुए एक गवैये ने उनसे प्रश्न किया, "भागवत जी, अवरोह में पंचम स्वर का उपयोग करना चाहिये ना ?"

भागवत जी ने यों उत्तर देकर प्रश्नकर्ता का मुख मर्दन कर दिया, "तोडी राग ऐसे ही गाया जाता है। दूसरी तरह से गाने से वह दूसरा

राग हो जाता है ।"

प्रश्नकर्ता भागवत जी के क्रोध से डरकर चुप बैठा रह गया । शेषण्णा जी ने एक बार सूक्ष्म दृष्टि से श्रोताओं की ओर देखा । भागवत जी के पीछे बैठा हुआ एक व्यक्ति, जो देखने में भिखमंगा-सा लगता था, आगे आया । वहाँ बैठे हुए गवैयों ने सोचा, 'इसका यहाँ क्या काम है ?' उसको देखकर सब लोग हँसने लगे । उसकी बिखरी हुई दाढ़ी और उस पर कहीं-कहीं सफेद बालों के कारण सभी को हँसी आ गई । उसने आगे आकर भागवत जी से कहा, "तोडीराग ऐसे नहीं गाया जाता । मेरी ढिठाई क्षमा कीजिये । आपका गाने का ढंग ठीक नहीं है ।"

पीछे बैठे हुए सब लोग खिसककर आगे आ गये और कान खड़े करके सुनने लगे ।

भागवतजी अपने हाथ में बँधी हुई सोने की घंटी दिखलाते हुए बोले, "तू संगीत के बारे में क्या जानता है ? तू कैसे कहता है कि मेरा गाना गलत है ?"

सब लोग उस नवागन्तुक को देखकर हँस पड़े ।

वह अजनबी बोला, "आपने अठाणा बेगडे राग की तरह तोडी राग गाया । इस राग में शोक और करुण रस प्रधान हैं । आपने अद्भुत और भयानक रस दिखलाये । आपने कहा कि मेरा गाया हुआ ही ठीक है और अपनी ही बात पर अड़े रहकर उस प्रश्नकर्ता का दिल दुखाया । आपकी आज्ञा हो तो मैं दिखा सकता हूँ कि दूसरी तरह से भी—अवरोह (उतार) में पंचम स्वर का उपयोग करके भी—तोडी राग गाया जा सकता है ।"

अब तो भागवत जी आपे से बाहर हो गये । उन्होंने सोचा कि यह भिखारी क्या गायेगा और 'हूँ' इस तरह हुंकार करके तम्बूरा दय ा । नवागन्तुक ने भक्ति के साथ तम्बूरा हाथ

में लिया। फिर उसे आँखों से लगाकर सुर मिला करके गाना प्रारंभ किया। थोड़ी देर हो गई। भागवतजी आगे आ गये। आधा घंटा बीत गया। भागवत जी वस्त्र से अपनी आँखों से आँसू पोंछ रहे थे। एक घंटा बीत गया। सब लोग शरीर की सुध-बुध भूलकर गाना सुनने में तल्लीन थे। उन लोगों को तभी होश हुआ, जब गायक ने तम्बूरा नीचे रखा।

भागवत जी उठकर खड़े हो गये। उन्होंने अपने हाथ से तोड़ा उतारकर नवागन्तुक के सामने रखकर उसे साष्टांग प्रणाम किया। सब लोग यह परिवर्तन देखकर आश्चर्य-चकित रह गये।

शेषण्णा जी ने आनन्दाश्रु बहाते हुए नवागन्तुक को गले से लगा लिया। फिर उन्होंने पूछा, "महाराज, आप कौन हैं ? आप कहाँ के रहने वाले हैं ? आपके गुरु कौन हैं ?"

"मैं एक सामान्य व्यक्ति हूँ अतः मेरा नाम पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरे गुरु महाविद्वान् तंजौर कृष्णय्यर जी हैं।"

"आप मेरे गुरु जी के शिष्य हैं क्या ? तब तो आप मेरे बड़े भाई हुए।"

यों कहकर भागवत जी ने नवागन्तुक को गले से लगा लिया। नवागन्तुक को भी बड़ा आनन्द हुआ।

फिर शेषण्णा जी ने पूछा, "आपने अपना परिचय नहीं दिया ना ?"

"मैं मैसूर का ही रहने वाला हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण राव है।"

इन शब्दों के उच्चारण करते ही एक ओर से 'बड़े भैया' ये शब्द सुनाई पड़े। एक खिड़की के कोने में थोड़ी जगह निकालकर गोपाल बैठा हुआ था। उसकी आवाज सुनकर लोगों ने उसके लिए जगह छोड़ दी। गोपाल ने आकर बड़े भाई को आलिंगन किया।

शेषण्णा जी बोले "आपने मैसूर की लाज बचा ली। महाराजा को आपका प्रशस्त संगीत सुनना चाहिये।"

"मैं इतने आदर के योग्य कहाँ हूँ ? वह बड़ी जगह है। राज-दरबार में गाने की योग्यता मुझमें है क्या ?"

"यही विनती तो मैं आपसे कर रहा हूँ।"

"आप मुझे काँटों में कढ़ेरते हैं। मैं तो आप-जैसे महानुभावों की चरण-धूलि हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये।"

"आप कहाँ ठहरे हैं ? आपके भोजन का प्रबन्ध ?"

"सब तरह की सुविधा है। मैं स्वयं ही यहाँ आकर आपका दर्शन करूँगा।"

यों कहकर लक्ष्मणराव ने भागवत जी का तोड़ा फिर उन्हींको लौटा दिया और गोपाल के साथ वहाँ से बाहर चला गया।

गोपाल बड़े भाई के साथ उसके डेरे पर आया। वह 'सीता विलास' धर्मशाला में एक कोठरी में ठहरा हुआ था। बिछाने के लिए एक दरी और सिर के नीचे रखने के लिए चार-पाँच कपड़े यही लक्ष्मणराव का सर्वस्व था।

गोपाल ने यह सुविधा देखकर कहा, "मेरे छात्रावास में चलिए। यहाँ ठीक नहीं है।"

"क्यों ? यहाँ सब तरह का आराम है ना ?"

"भोजन के लिए क्या करते हैं ?"

"आते समय किसी पुण्यात्मा ने मुट्ठी-भर रुपये दे दिये थे। वे मैंने पास ही के 'अन्नपूर्णा लाज' होटल के मालिक को सौंप दिये थे। वे मुझे बढ़िया भोजन देते हैं। मेरी देख-भाल करते हैं। मेरा आदर करते हैं। यदि किसी दिन मैं भोजन करने न जाऊँ तो मुझे ढूँढ़ते हैं।"

गोपाल भैया के साथ ही जाकर उसके होटल में ही उसके साथ भोजन करके अपने कमरे को लौट आया।

लक्ष्मण ने पूछा, "गोपाल, अब तू किस क्लास में पढ़ता है ?"

"एम० ए० में। इस वर्ष परीक्षा दूँगा।"

"अरे तू एम० ए० तक पहुँच गया। मालूम होता है कि अब मुझे स्कूल में पढ़ना चाहिए। मुझे स्कूल में दाखिल करेंगे कि नहीं ?"

"तुमको स्कूल ? तुमको पढ़ाने वाले महाराज कौन है ? मुझे तो दिखलाई देता नहीं।"

"हैं गोपी --जितने चाहे उतने हैं। मुझे विद्या पढ़ाने वाले गुरु हैं—मुझको पुत्र की तरह पालकर जिन्होंने मेरी रक्षा की वे माता ही मेरी गुरु हैं—जिन्होंने मेरे मित्र बनकर मेरे लिए गुरु की करुणा का प्रबन्ध किया वे ही मेरे गुरु हैं। मैं अपने किसी गुरु को भी नहीं भूल सकता। घर का क्या समाचार है ?"

गोपाल ने सब समाचार सविस्तार सुनाया। लक्ष्मण ने अपनी कथा सुनाई। उसी समय पूर्व दिशा में प्रकाश फैल गया। दोनों का हृदय तृप्ति से लबालब भर गया था। मन को अनिर्वचनीय आनन्द ने घेर लिया था। गोपाल ने लक्ष्मण के जीवन में हुए परिवर्तन पर लक्ष्य किया। जीवन को और उसके सम्बन्ध की सब बातों को लक्ष्मण बाहर से देखकर आया था। उसे जीवन को नये सिरे से देखना था।

अट्ठाईस

राज-महल में गाने के लिए बहुत देर इन्तजार करना नहीं पड़ा। अगले दिन सायंकाल जब लक्ष्मण शेषण्णा से मिलने गया तो वे बोले, "महाराज ने रविवार को सायंकाल आपका गाना सुनना स्वीकार किया है, लक्ष्मणराव !"

लक्ष्मण ने शेषण्णा जी के विश्वास, प्रेम और उत्साह से बाध्य होकर 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर लिया।

राज-महल में गाना कोई मामूली बात नहीं थी। उसमें संगीताचार्यों के प्राण काँप जाते थे। मैसूर के महाराज स्वयं उच्च कोटि के संगीत-विद्वान् हैं। उनके आगे कसरत करने से काम नहीं चल सकता। सोने की घंटी, बड़ी-बड़ी उपाधियाँ, अखबारों में प्रशंसावलियाँ वहाँ किसी काम नहीं आतीं। संगीत-विद्वानों की असली पूँजी का परिचय जनता को भी मिले, इसलिये महल के चारों बड़े फाटकों पर ध्वनिवर्धिनी यन्त्र (लाउड-स्पीकर) लगा दिये गये हैं, अतः महल के गाने को सब लोग सुन सकते हैं। साधारणतः हर एक गवैयेको आधे से लेकर पौन घण्टे तक गाने का मौका मिलता था। यदि किसी को अधिक समय मिले तो लोग समझते थे कि महाराज को उस गवैये का गाना बहुत पसन्द आया। महल में सिर्फ पाव घंटा गाना गाकर भी गवैये लोग अपने प्रेमियों से झूठ-मूठ शेखी बघारा करते थे कि मैंने महाराजा साहब के सामने दो घंटे, तीन घंटे गाया। ध्वनिवर्धिनियों के कारण अब वह सम्भव नहीं रहा।

महाराज साहब के सामने जाने के लिए दरबारी पोशाक

पहननी पड़ती है। उसका प्रबन्ध करने का भार गोपाल पर पड़ा। वह अपने परिचित लोगों से मँगनी माँगकर लम्बा काला कोट, जरी की धोती, पगड़ी और कमर पट्टा आदि ले आया और उससे लक्ष्मण को अलंकृत किया। शेषण्णा जी लक्ष्मणराव को स्वयं अपने साथ राज़-महल में ले गये।

गोपाल रंगाचार्लु टाउन-हाल के नीचे बैठकर ध्वनिवर्धिनी द्वारा भैया का गाना सुन रहा था। उसीकी तरह और भी हजारों लोग लक्ष्मण का सुमधुर संगीत सुनकर सिर हिला रहे थे। पौन घंटा बीता, एक घंटा बीता—डेढ़ घंटा बीता। दो घंटे बीत गये। तब कहीं जाकर मंगलारती सुनाई पड़ी। सब लोग आश्चर्य-चकित हो गये। जिस महानुभाव को राज-महल में दो घंटे मिले उसकी सबने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की।

गाना समाप्त होने के बाद लक्ष्मण शेषण्णा के साथ बाहर आया। राज-महल के संगीतज्ञ विद्वान् लोग उसे घेरे हुए थे और उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

उनकी मीठी बातों से किसी तरह बचकर धीरे से वह गोपाल के पास आया। "गोपाली, जरा बाहर चलकर इस कपड़ों के बोझे को उतार दूँ। चलो, यहाँ से भाग चलें!"

यह कहकर कुक्कनहल्ली तालाब के पास एकान्त जगह में जाकर दरबारी कपड़े उतारकर गोपाली को दे दिये और वहाँ एक पत्थर पर जाकर दोनों बैठ गये।

"भैया, महाराज ने क्या कहा?"

"दो घंटे तक मेरा गाना सुनने की कृपा की। मालूम होता है कि मेरा तुच्छ गाना उनको बहुत पसन्द आया। वे बड़े आदमी हैं—उदार स्वभाव हैं। उन्होंने मुझ-जैसे नगण्य की सेवा स्वीकार की।"

"लच्चू भैया, तुमने वस्तुतः आज कमाल कर दिया। सुरटि,

मलय मारुत, खरहर प्रिय आदि राग तुमने कैसी खूबी से गाये। मेरा विश्वास है कि दक्षिणी संगीत के लिए तुम्हारा आदर्श है।"

"बख्शी ने कहा है, यहीं रहो। मैं क्या करूँ ?"

"रह जाओ! उसमें हर्ज क्या है ?"

"कहाँ मैं और कहाँ राज-दरबार ? मैं तो एक दासय्या हूँ। मैं तो कल ही यहाँ से चल दूँगा।"

"शेषण्णा से बिना मिले ही चल दोगे क्या ?"

"नहीं। उनसे मिलकर उनसे विनती करके ही जाऊँगा।"

"कहाँ जाओगे ?"

"इस समय तो बंगलौर जाऊँगा। शान्ता से मिलना है। उसके बाद शृंगेरी और पंढरपुर जाऊँगा।"

"तुम्हारे जीवन के उद्देश्य का क्या हुआ ? तुम्हारी प्रबल इच्छा थी कि संगीत-विद्या दूसरों को सिखलाऊँ। उसका क्या हुआ ?"

"वह अब भी है। मैं उसे भूला नहीं। उसे भी पूरा करूँगा।"

"क्या बंगलौर में ही उसे पूरा नहीं कर सकते ?"

"अच्छा देखेंगे। पहले वहाँ पहुँच तो लें।"

इस तरह बातचीत करते हुए दोनों सीता-विलास धर्मशाला में पहुँचे।

सवेरा होने पर लक्ष्मण शेषण्णा से मिलने के लिए चला। शेषण्णा ने बड़े आदर से उसका स्वागत किया। बातें करते-करते उन्होंने एक चैक लक्ष्मण के हाथ में दे दिया।

"यह क्या है ?"

"एक हजार पाँच सौ रुपये का एक चैक है।"

"मुझे किसलिये ?"

"महाराजा ने आपका गाना सुनकर प्रसन्न होकर भेजा है।"

"इतना पैसा लेकर मैं क्या करूँ ?"

"आप जिस तरह चाहें उस तरह से उसका उपयोग कर सकते हैं ।"

"ऐसी बात है तो इसे आप अपने ही पास रखिये । जो विद्यार्थी संगीत सीखना चाहते हैं, और जिनको पैसे की कठिनाई है उनको बाँट दीजिये ।"

"आपकी खुशी ।"

"एक और बात । मैं आज दोपहर बंगलौर जा रहा हूँ । कृपा-दृष्टि बनी रहे ।"

"कब लौटेंगे ?"

"कह नहीं सकता ।"

"खर्च के लिए आपको पैसा दूँ ?"

"कुछ नहीं चाहिये । मेरा छोटा भाई है । वह रेल का किराया दे देगा ।"

"जल्दी दर्शन दीजिये । नवरात्रि के दिनों में फिर राज-महल से आपके लिए बुलावा आ सकता है ।"

"अच्छा ।"

यह कहकर लक्ष्मण चल दिया । शेषण्णा लक्ष्मण की त्याग-बुद्धि से आश्चर्य-चकित हो गये ।

गोपाल लक्ष्मण के साथ बंगलौर नहीं जा सकता था, क्योंकि उसकी परीक्षा अगले सप्ताह आरम्भ होने वाली थी । उसने वेंकटेशय्या को तार देकर भैया को रेल में सवार करा दिया ।

"तू कब आयेगा गोपी ?"

"परीक्षा समाप्त होते ही । दो सप्ताह बाद फौरन चल दूँगा ।"

"देर मत लगाना । जल्दी आ जाना !"

"लक्ष्मण भैया, ऐसा ही करूँगा ।"

रेलगाड़ी चल पड़ी । लक्ष्मण के मन में भावनाओं की तरंगें उठने

लगीं। वही कावेरी नदी—हरे-भरे खेत—बादलों को छूने वाले नारियल के पेड़—सब जगह भरा-पूरा प्राकृतिक दृश्य—प्रकृति में आनन्द, हास्य, विनोद। किन्तु लक्ष्मण के मन में असहनीय दुःख है। पुरानी सब स्मृतियाँ एक-एक करके नई कला के साथ आनी आरम्भ हो गई। वह सोच रहा था, अब फिर बंगलौर जाना है ना! बंगलौर की समृति-मात्र उसके देह को कँपा देती थी। एक तरह का भय हृदय में दारुण हलचल पैदा कर रहा था। अगले ही क्षण एक और स्मृति शान्ति-मन्दानिल का संचार करने लगती थी। और श्रान्त मन ठंडी हवा के लगने से सो जाता था। प्रिय वस्तु की स्मृति ही अशान्ति को दूर करने वाला शान्ति-मन्दानिल बन जाती थी।

'जया, जो थोड़ी-बहुत विद्या मैंने सीखी है वह तेरी ही है। तू तब मुझे सचेत न करती तो मैं दिशा भूले हुए राह के भिखारी की तरह भटकता फिरता—तू मौजूद है—चिरंजीवी होगी—किंतु······ कहाँ है ?'

दुःख उफनकर आने लगा। उसने अपना मुँह हाथों से ढाँप लिया।

जिस समय गोपाल का तार पहुँचा, उस समय वेंकटेश भोजन के लिये जा रहा था। उसे तार पर विश्वास नहीं हुआ। उसने समझा कि गोपाल ने मजाक से यह तार दे दिया होगा और शान्ता को पढ़कर सुनाया।

तार का अर्थ शान्ता की समझ में नहीं आया। फिर भी उसकी आँखों में आँसू भर आये और कण्ठ गद्‌गद् हो गया। वह बोली, "वह जीवित है ना! उतना ही काफी है।"

तो भी वेंकटेश ने सायंकाल को स्टेशन पर जाने का निश्चय किया।

स्टेशन पर वेंकटेश को देखकर लक्ष्मण को आश्चर्य हुआ। उसने

सोचा, यह सब गोपाली की करतूत है और वेंकटेश के साथ उसकी मोटर कार में बैठकर चल दिया। गाड़ी में कुशल-प्रश्न के सिवाय और कुछ बातचीत नहीं हुई। उन दोनों को सूझा ही नहीं कि क्या बातचीत करें। गाड़ी घर के सामने आकर खड़ी हो गई।

शान्ता दौड़कर आई। भैया को देखते ही उसने पुकारा, "लच्चू भैया!"

लक्ष्मण ने 'शान्ता' पुकारकर बहन को गले लगाया। दोनों ने बहुत देर तक रोकर हृदय हल्का किया।

तब वेंकटेश पत्नी से बोला, "बहुत दिनों के बाद भाई आया है। उसको कुछ काफी-वाफी न देकर बैठी रो रही हो शान्ता!"

तब शान्ता मन स्वस्थ करके काफी लेने चली गई। घर में रखा हुआ कुछ जल-पान का सामान और काफी लाकर उसने सामने रख दिया। तीनों जने बैठकर बातें करने लगे। तब तक जो घटनायें हुई थीं सो सब वेंकटेशय्या और शान्ता ने कह सुनाईं। रामचन्द्र पर जो कुछ बीती उसे सुनकर लक्ष्मण को बहुत दुःख हुआ।

"कहीं पर भी हो, अच्छी तरह से रहे तो ठीक है। छोटी माँ का क्या हाल है, यह तो किसी ने बतलाया ही नहीं।"

"वह किसी के बीच में नहीं पड़तीं। अपना भोजन अपने हाथ से बना लेती हैं। और उनको तो बस अपने-आपसे और अपने पूजा-पाठ से मतलब है।"

"उसके बाद शामण्णा को देखा नहीं वेंकटेश?"

"हाँ, तभी अन्तिम बार देखा था। उसके बाद उनका दर्शन नहीं हुआ।"

"अच्छे सज्जन हैं। उनकी आत्मा संस्कारी आत्मा है। जब तक उन पर हमारा ऋण रहा, उतने दिन वे हमारे घर रहे।"

शान्ता ने याद दिलाई कि भोजन के लिए देर हो गई। तब सब

लोग उठकर रसोईघर में गये ।

निश्चय हुआ कि लक्ष्मण वहीं रहेगा । दरवाजे के पास का कमरा उसके लिए खाली कर दिया गया । शान्ता ने उस कमरे को अच्छी तरह सजाकर, पलंग डलवाकर उस पर एक नरम बिस्तर बिछा दिया।

यह देखकर लक्ष्मण बोला, "अरे यह क्या ? ऐसे नरम गद्दे पर लेटने से मुझे नींद ही नहीं आती । चारपाई और सब बिस्तर बाहर निकलवा दे बहन । मेरे लिए एक चटाई और एक तकिया काफी है ।"

शान्ता के अनुनय-विनय का लक्ष्मण पर कोई असर नहीं हुआ । उसको तब मालूम हुआ कि जीवन में जो धक्का लगा है, उससे भैया के मन में कैसा वैराग्य उत्पन्न हो गया है। वह वातावरण के ऊपर निर्भर होकर दूर हो जाने वाला वैराग्य नहीं है। वह पेट भरने के लिए बनाया हुआ पाखण्ड नहीं था । उसके रक्त की हरेक बूँद में त्याग और वैराग्य ने घर कर लिया था । यह बात शान्ता ने भली-भाँति देख ली। तब लक्ष्मण जिस वस्तु को अनावश्यक समझता था, ऐसी कोई वस्तु शान्ता ने उसको नहीं दी । उसने इस बात का पूरा खयाल रखा कि किसी तरह से लक्ष्मण के मन को चोट न पहुँचे—वह किसी प्रकार के बन्धन में न पड़े । इसी बात को मन में रखकर शान्ता ने भैया के रहने-सहने का प्रबन्ध किया ।

लक्ष्मण के आने का समाचार जल्दी ही शहर-भर में फैल गया। कस्तूरी चाहती थी कि मेरी सुगन्ध बाहर न फैले और मैं अन्दर ही छिपी रहूँ, किन्तु सुगन्ध ने वायु के साथ मिलकर उसका अस्तित्व दसों दिशाओं में फैला दिया ।

सुन्दरराव को समाचार मिला । वे भीमराव को साथ लेकर लक्ष्मण से मिलने के लिए आये । उनसे मिलकर लक्ष्मण को भी परमानन्द हुआ । फिर उसे यह चिन्ता हुई कि ये मेरे आने का समाचार सारे

शहर में फैला देंगे। सुन्दरराव के आने के अगले दिन संगीत-समाज के मंत्री ने लक्ष्मण के पास धरना दे दिया। लक्ष्मण ने समाज में गाना स्वीकार नहीं किया और मंत्री ने उसे छोड़ा नहीं।

"आपके गुरु श्री कृष्णय्यर भी समाज में गाते थे। आप क्यों स्वीकार नहीं करते ?"

"कहाँ वे और कहाँ मैं ? मैं तो अभी विद्यार्थी ही हूँ।"

"परवाह नहीं महाराज, आप कृपया हमारी विनती स्वीकार कर लीजिये।"

"सिर्फ इसके लिए क्षमा करें। यदि मेरा गाना सुनना चाहते हों तो आप ही यहाँ आ जाइये। मैं आपको, जितना चाहे गाकर सुनाऊँगा।"

"मेरे समान ही बहुत-से लोग आपका गाना सुनना चाहते हैं ना ?"

"उनको सन्तुष्ट करने के लिये दूसरे संगीताचार्य मौजूद हैं।"

"महाराज, आप कुछ चिन्ता न करें। आप जितना कहें उतना पैसा हम देने को तैयार हैं।"

"क्या संगीत पैसे को मिलता है ? आप ही बताइये। क्या वह बाजार का सौदा है ? मेरे गुरु जी ने मुझे अपने घर रखकर पुत्र की तरह पालकर विद्या सिखाई है। क्या मैं उसे बेचकर अपना पेट पालूँ ?"

"ऐसी बात है ? अच्छा, हम पुरन्दरदास की जयन्ती का उत्सव मनाने वाले हैं। इस अवसर पर तो आप गायेंगे ना ?"

"उसमें क्या है ? अवश्य गाऊँगा। उन्हींके बनाये भगवान् के नाम के चार पद उनके चरणों में अर्पित कर दूँगा।"

संगीत-समाज के मन्त्री सन्तुष्ट होकर चले गये। किन्तु लक्ष्मण को सन्तोष नहीं हुआ। वह धीरे से उठकर अपने विश्राम-धाम को चल दिया। घर से लगभग एक मील दूर कुछ पहाड़ियाँ थीं। पहा-

ड़ियों की तलहटी म एक तालाब था। उसके एक ओर वृक्ष-पंक्ति थी। लोग साधारणत: वहाँ आते डरते थे। कुछ भिक्षु इधर-उधर पहाड़ियों में रहते थे। यही लक्ष्मण का विश्राम-धाम था। पहाड़ी पर के वृक्ष ही उसके साथी थे। अपनी मूक वेदना को वह जहाँ प्रकट करता था वहाँ हृदय खोलकर गाता था। पास ही एक पहाड़ी थी जिस पर टकराकर शब्द प्रतिध्वनित होता था। मानो इस पहाड़ी ने लक्ष्मण की शिष्यता ग्रहण कर ली थी। और जो कुछ लक्ष्मण कहता था, वही ध्वनि इस पहाड़ी से भी पुनः सुनाई देती थी। लक्ष्मण जब वहाँ जाकर बैठ जाता था तो उसे घर, लोगों और काल किसी वस्तु की सुध न रहती थी। उसके हृदय में नये-नये अनुभवों का बोध होता था। प्रकृति अपने गुप्त भंडार में छिपाकर रखे हुए अमूल्य पदार्थ वहाँ लक्ष्मण को प्रदान करती थी। जो वस्तुएँ वह चाहता था, वे उसे उसमें मिल जातीं थीं। प्रतिदिन वहाँ बैठकर जब लक्ष्मण गाता था, तो उसे इस सत्य का भान होता था कि मैं कितना थोड़ा जानता हूँ। एक राग को गाते-गाते वह एक अन्तहीन स्रोत का रूप धारण कर लेता था। वह सोचता था कि मैं एक राग भी अच्छी तरह नहीं जानता। और अपने-आपको एक बड़ा गवैया समझे बैठा हूँ। यह कैसी लज्जास्पद बात है।

प्रकृति भी लक्ष्मण के गान में साथ दे देती थी। उसका गाना सुनकर उसमें तल्लीन हो जाती थी। जिस गायक ने उसको इतना सुखी बनाया उसको आनन्द प्रदान करने के लिए स्वयं भी गाने लगती थी। चेतन अचेतन सब पदार्थ उस वृक्षों के गान का साथ देकर मन-मोहक संगीत की सृष्टि करते थे। किन्तु लक्ष्मण को उस सबका अर्थ पूर्ण रूप से समझ में नहीं आता था। वह बड़े ध्यान से सुनने लगता था और स्थूल रूप से उसका भाव ग्रहण करता था। उसको बड़ा दुःख होता था कि ये सूक्ष्म विचार मेरी समझ में नहीं आये। कभी-कभी वह

प्रकृति को पुकारकर आर्त स्वर से विलाप करने लगता, 'तू सब-कुछ समझती है और मैं अज्ञ हूँ। तू पण्डिता है और मैं मूर्ख हूँ, क्या यही सोच-सोचकर तू मेरी हँसी उड़ाती है ? बहरे के सामने किन्नरी का गान कराकर क्या उसका मन दुखी करना चाहिए ? क्या मैं तेरा बेटा नहीं ? तेरा शिष्य नहीं ? क्या मैं तेरा ही संगीत नहीं गाता हूँ ?'

उन्तीस

परीक्षा समाप्त हुई नहीं कि गोपाल फौरन बंगलौर को चल दिया। उसने जैसे वेंकटेशय्या को वचन दिया था, वैसे ही 'वीर कर्नाटक' का सम्पादकत्व-भार अपने ऊपर उठाकर उसके घर में ही रहने लगा।

वेंकटेश को रात और दिन की परवा न करके हमेशा काम में जुता रहना पड़ता था। अनेक बार कई-कई सप्ताह तक प्रवास म रहना पड़ता था। गोपाल के आने से लक्ष्मण को भी एक साथी मिल गया। गोपाल भी लक्ष्मण के कमरे में ही रहने लगा। अखबार के दफ्तर से लौटने पर वह लक्ष्मण के साथ ही रहता था। एक दिन लक्ष्मण ने गोपाल को अपने साथ ले जाकर अपना विश्राम-धाम दिखलाया। शान्ता ने एक दिन धीरे से लक्ष्मण का तम्बूरा लाकर उसके कमरे में रख दिया।

तम्बूरे को देखकर लक्ष्मण को पुरानी सब बातें याद आ गईं। उसको तम्बूरे की कितनी इच्छा थी और वह उसको किस तरह मिला, ये सब बातें उसको याद आ गईं। उसने अपनी बहन और बहनोई को धन्यवाद दिया, जिन्होंने कि इतने यत्न से इतने दिनों तक तम्बूरे को सँभालकर रखा; फिर सुर मिलाकर गाने लगा। मधुर शहाना राग था। गाने वाले के विनय और दैन्य के साथ राग का भी पूरा मेल था। लक्ष्मण के मुँह से भी 'अहा' यह शब्द निकला। अपने संगीत से उसको स्वयं ही परम सन्तोष हुआ। ऐसा प्रतीत होता था, मानो उसके देह में नई जान आ गई। राग की नई-नई कलायें लक्ष्मण क गाने में उदय होने के लिए स्वयं ही आगे आने लगीं।

गाना समाप्त होने पर गोपाल बोला, "यही सच्चा संगीत है ।"

"लक्ष्मण ने उत्तर दिया, "हाँ, वस्तुतः यही संगीत है । मैं आनन्द-विभोर हो गया हूँ ।"

"तुम सब राग गाते हो, किन्तु पूर्वी क्यों नहीं गाते हो ?"

"गाऊँगा भैया, एक दिन वह राग भी गाऊँगा । इस समय पूर्वी, मालूम नहीं किसलिए मेरे मुँह में बोलती ही नहीं । एक दिन वह मेरे हृदय को छेदकर आयेगी ।"

"मुँह में बोलती ही नहीं, इसका क्या मतलब ? क्या तुमको बोलने वाले की प्रतीक्षा करनी पड़ती है ?"

"जिनको प्रतीक्षा करनी पड़ती है, े प्रतीक्षा करते ही ह। मेरे गुरुजी ने जन्म-भर प्रतीक्षा की थी । शेषण्णा जी कल्याणी राग के लिए जन्म-भर प्रतीक्षा नहीं करते हैं क्या ? संगीत एक आध्यात्मिक साधना है । त्यागराज और पुरन्दरदास-जैसे महात्मा सच्चे संगीतज्ञ विद्वान् थे । संगीत आत्म-संस्कार का फल है ।"

"क्या तुम्हारा संगीत आत्म-संस्कार का फल नहीं है ?"

"हो सकता है, किन्तु मेरे संगीत और त्यागराज, पुरन्दरदास-जैसी विभूतियों के संगीत में एक बड़ा अन्तर ह । उनका संगीत शांति-दायक है । उसको सुनने से वैसे ही आनन्द होता है, जैसे माता के मधुर शब्द को सुनने से । किन्तु मेरा संगीत अशान्तिदायक है । मेरा संगीत सुनने से चित्त-भ्रान्ति होती है । उनका संगीत मन को ऊँचा उठाता है और मेरा संगीत मन को क्षुब्ध कर डालता है, क्योंकि मेरे मन में शान्ति नहीं है । जिस मन में शान्ति नहीं है, वह दूसरों को कैसे शान्ति प्रदान कर सकता है ?"

"तुम्हारा संगीत जिस अशान्ति को उत्पन्न करता है, वह क्षुद्र सांसारिक अशान्ति नहीं है ना ? वह तो सोये हुए चैतन्य को झकझोर-

कर जगाने वाला गुरु है न ? मनुष्य अपनी निद्रा से जागकर नये लोकों को जीते इस इच्छा से बढ़कर और क्या है ? जीवन के लिए चाहिये जागृति··· ··· ··· क्रान्ति ।"

"तू अभी तक बच्चा है । जागृति···क्रान्ति की इच्छा करना तेरे लिए स्वाभाविक है । मैं बूढ़ा होने को आया । शान्ति की इच्छा करना क्या मेरे वयो-धर्म को सूचित नहीं करता ?"

"नहीं । तुम इस सीढ़ी पर चलकर आगे चले गये हो । मैं अभी तक गया नहीं । तुम दौड़ रहे हो, मैं अभी तक घुटनों के बल रेंग रहा हूँ ।"

लक्ष्मण जानता था कि गोपाल घुटनों के बल रेंगने वाला बच्चा नहीं है । वह छोटे भाई के विनय और जिज्ञासुत्व से बहुत प्रसन्न हुआ । गोपाल कभी-कभी प्राचीन कन्नड साहित्य के चुने हुए रत्नों के उत्तम-उत्तम अंश पढ़कर भैया को सुनाया करता था । लक्ष्मण ने अपने प्रिय पुरन्दरदास के विषय में अनेक नई बातें जानकर छोटे भाई से अनेक नये कीर्तनो का संग्रह किया ।

पुरन्दरदास की जयन्ती का उत्सव आ गया । समाज के मन्त्री को पहले ही दिये हुए अपने वचनों के अनुसार लक्ष्मण ने उसमें गाया । उसकी गंभीर विद्वत्ता को देखकर सबको आश्चर्य हुआ कि पुरन्दरदास के कीर्तनों के गाने में भी इतनी संगीत-शास्त्र की विद्वत्ता दिखलाई जा सकती है ।[1]

यह मौका देखकर गोपाल ने कहा—

"यहाँ कुछ लोगों का विचार है कि कन्नड के कीर्तन संगीत के

---

१. दक्षिण भारत-भर में सब जगह संगीताचार्य लोग, चाहे उनकी मातृ-भाषा कुछ भी क्यों न हो, त्यागराज के कीर्तन गाते हैं । ये कीर्तन तेलुगु में हैं और संस्कृत-शब्दों की भरमार है, जब कि पुरन्दरदास के कीर्तन कन्नड में हैं ।

लिए उपयुक्त नहीं होते। इस विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है भैया ?"

"यह विचार भ्रमपूर्ण है। पुरन्दरदास, कनकदास, विजयदास, आदि कर्नाटकी सन्तों के कीर्तन क्या पर्याप्त नहीं हैं ? त्यागराज और दीक्षित के कीर्तनों में जो चमत्कार दिखलाय जा सकते हैं, कर्नाटकी दास सन्तों के कीर्तनों में भी वे दिखलाये जा सकते हैं।"

"इसी तरह बसवण्णा, महादेवियक्का आदि शैव सन्तों के वचनों और निजगुण शिवयोगी, सहजानन्द आदि शैव महात्माओं के कीर्तनों का उपयोग हमारे गवैये क्यों न करें ?"

"जरूर करना चाहिये। गाने वाले के हृदय से जैसे मातृभाषा आती है, वैसे दूसरी भाषा नहीं आती। तू थोड़ी सहायता करे तो मैं उन कीर्तनों का संग्रह करूँगा।"

"बड़ी खुशी से।"

उस दिन से लक्ष्मण ने कन्नड भाषा के नये-नये कीर्तनों का संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। एक मास में ४०-५० कीर्तनों का संग्रह हो गया। गोपाल ने इरादा किया कि कन्नड कीर्तनों के एक संगीतोत्सव का आयोजन करके तैलुगु आदि दूसरी भाषाओं के मोह में पड़े हुए भ्रान्त गवैयों को मार्ग दिखलाना चाहिये। वेंकटेशय्या तब गाँव में नहीं था। वह उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगा।

जयन्ती-उत्सव समाप्त होने पर लक्ष्मण को बिल्कुल फुरसत मिलनी बन्द हो गई। प्रातः-सायंकाल झुण्ड-के-झुण्ड शिष्य उसके पास आने लगे। बहुत-से गाना जानने वाले आते थे, बहुत-से न जानने वाले सीखने के लिए आते थे, कुछ लोग इसलिए आते थे कि 'यह कौन-सा महा पंडित है, मैं उसको हरा दूँगा और स्वयं ही हारकर उसके शिष्य बनकर जाते थे। कोई आकर गाना सुनाने के लिए कहता तो वह गा देता, कोई सिखलाने को कहता तो वह सिखा

देता । सिखलाने में वह एक ही बात का खयाल रखता था । उसका नियम था कि जिसका गला ठीक नहीं हो उनको गाना न सिखलाकर बाजा बजाना सिखलाता था ।

"गला ठीक नहीं हो तो राग और भाव नहीं निकलते । अच्छा गला तार ठीक की हुई वीणा के समान है । जैसे तार ठीक न की हुई वीणा से कर्कश ध्वनि निकलती है वैसे ही खराब गले वाले का संगीत होता है ।"

तब शिष्यों ने प्रश्न पूछा कि, "यदि ऐसी बात है तो क्या कोनेरी राजपुरम् वैद्यनाथय्या, पटम् सुब्रह्मण्य अय्या, नायना पिल्ले आदि का अच्छा गला था क्या ?"

तब वह हँसता हुआ शिष्यों से कहता, "उनकी विद्या अपार थी । उनकी महान् कला में गला अच्छा न होने की त्रुटि छिप जाती थी । तुम्हारे पास कुछ भी न हो तो क्या करोगे ?"

गोपाल पास होता तो उससे कहता, "गोपी तेरी क्या सम्मति है ?"

'हाँ, भैया हाँ ! जिनका गला ठीक नहीं ऐसे लोगों ने गाना सीखकर कर्नाटकी संगीत को बदनाम कर दिया है । हिन्दुस्तानी संगीत वालों में ऐसे आदमी विरले ही होंगे जिनका गला ठीक नहीं, क्योंकि जिनका गला ठीक नहीं ऐसे लोग हिन्दुस्तानी संगीत वालों में गाना सीखते ही नहीं, सिर्फ वाद्य-संगीत सीखते हैं । हमारे देश में ऐसा नहीं है । यहाँ जो चाहता है वही गाना सीख सकता है । हमारे कवि ने भी इसी बात पर बहुत जोर दिया है ।"

"किस कवि ने ऐसा लिखा है जी, पढ़कर सुनाना !"

तब गोपाल ने महाकवि रत्नाकर वर्णिकृत 'भरतेश वैभव' नामक काव्य से अपनी बात का समर्थन करने वाले कुछ पद्य लक्ष्मण और उसके

के शिष्यों को पढ़कर सुनाये ।

लक्ष्मण बोला, "ये पद्य स्वर्णाक्षरों में लिख रखने लायक हैं ।"

गोपाल चुपचाप नहीं बैठा था । 'वीर कर्नाटक' में लक्ष्मण-सम्बन्धी समाचार समय-समय पर छपता रहता था । साधारणतः शनिवार के अंक में कला और साहित्य-सम्बन्धी सचित्र लेख होते थे । जब से गोपाल ने सम्पादन-भार अपने ऊपर लिया तब से शनिवार के अंक का महत्त्व बहुत बढ़ गया । वह स्वयं भी कन्नड साहित्य और कन्नड कवियों के विषय में लेख लिखा करता था और विद्वानों से भी लिखाकर प्रकाशित किया करता था । शनिवार के अंक का लक्ष्य विशेषतः कर्नाटक संस्कृति की ओर होता था । उसमें कन्नड देश के चित्रकार, शिल्पी, संगीतकार, गमकी, वक्ता सबके विषय में कूलंकष चर्चा होती थी ।

एक शनिवार का अंक 'लक्ष्मणराव और उनकी कला' के विषय में ही विशेषांक रूप में था । उसमें लक्ष्मण की जीवनी, प्रतिभा, विद्यार्जन का साहस आदि सबके विषय में पूरे विस्तार से लिखा गया था । संगीत के विषय में लक्ष्मणराव की सम्मतियों को एक अलग लेख के रूप में प्रकाशित किया गया था । लक्ष्मण ने कन्नड भाषा के काव्यों से कुछ अंश चुनकर उनकी स्वरावली निश्चित करके उनको संगीत रूप में परिणत किया था, उसके इस महत्त्वपूर्ण कार्य की बड़ी प्रशंसा की गई थी ।

सब लोगों ने इस लेख को बहुत पसन्द किया । एक कन्नड कलाकार का परिचय इतनी उत्कृष्ट रीति से कराने के लिए सबने गोपाल की भूरि-भूरि प्रशंसा की । किन्तु लक्ष्मण को गोपाल का यह काम पसन्द नहीं आया । इस लेख से उसकी शान्ति में बड़ा आघात हुआ । संगीत-सभाओं में आने के लिए प्रार्थना करते हुए दसों पत्र रोज आने लग गये । कोई कहता था कि हमारे यहाँ विवाहोत्सव में आपका

होना । चाहिये, कोई संगीत के विषय में व्याख्यान देने के लिए बुलाता था ।

जब उनका उत्तर देते-देते लक्ष्मण के नाक में दम हो गया ।

तब वह एक दिन गोपाल से बोला, "गोपाल, तूने अच्छा उपकार किया । तूने तो ऐसा कर दिया कि मै इस नगर में जी ही नहीं सकता । मैं किसी से कुछ भी कहे बिना कहीं चला जाऊँगा ।"

"ऐसी बात है क्या लच्चू भैया ? आपको यह कीर्ति प्राप्त होनी चाहिये । आपकी विद्या के पुरस्कार में जनता आपको और क्या दे सकती है ? वह आपके ऊपर अपने विश्वास और प्रेम को इसी रूप में प्रकट करती है ।"

"ठीक है । किंतु मुझे इस विश्वास की आवश्यकता नहीं । मैं इसलिए नहीं गाता कि लोग मेरा गाना पसन्द करें और मुझे उनसे कीर्ति प्राप्त हो । मैं गाता ही नहीं, गाना स्वयं ही मुझसे बाहर निकलता है ।"

"ऐसा ही सही । क्या आपको अपने सच्चे संगीत का रस लेने का मौका जनता को नहीं देना चाहिये ? खराब संगीत सुन-सुनकर लोगों की रुचि भी उसीके अनुकूल बदल गई है । ठीक संगीत का रूप भी भूलता जा रहा है । गवैये लोग मुँह से तो कहते हैं, 'श्रुतिः माता, लयः पिता' (श्रुति संगीत की माता है, लय पिता है) किन्तु कोई श्रुति की गन्ध भी नहीं जानता । अब तो कहने लगे हैं कि 'दक्षिणादि संगीत के लिए श्रुति की कोई विशेष आवश्यकता नहीं । वह तो हिन्दुस्तानी संगीत वालों का पागलपन है । ताल और चातुर्य हो तो सब ठीक है ।' और इसी सिद्धान्त पर लोगों ने संगीत-शास्त्र के नये नियम बनाना आरम्भ कर दिया है । संगीत-कला को अच्छी तरह जानने वाले आप-जैसों के ऊपर ही इसका भार है ना ? अपने लिए नहीं, संगीत-कला के लिए आपको यह काम नहीं करना चाहिये क्या ?"

यह सोचकर कि और वाद-विवाद बढ़ाना अच्छा नहीं; गोपाल चुप रहा। सम्भावना थी कि उत्सव का सारा खर्च निकाल देने पर भी लगभग एक हजार रुपया बच रहेगा। गोपाल और वेंकटेशय्या दोनों सोचने लगे कि उसका क्या करें। लक्ष्मण तो पैसा लेगा नहीं— इसलिए अब क्या करें ?

तब उन्होंने सोचा कि उसीसे पूछें। वह बोला, "कर्नाटक-साहित्य परिषद् को दे दो। वह उसको कन्नड-कीर्तन गाने वालों को आदरार्थ दे देवे।"

"ठीक है।"

"एक और बात है। तुम लोग कल मुझे कुछ देने वाले हो ना !"

"हाँ।"

"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि क्या दोगे ?"

वेंकटेशय्या के इशारा करने पर गोपाल ने अन्दर से लाकर तोड़ा लक्ष्मण के हाथ में रख दिया। लक्ष्मण ने उसे घुमा-फिराकर देखा। 'मेरे हाथ में पहनाओ' यह कहकर, हाथ में पहनकर, हीरे और लालों को चमचमाता देखकर आनन्दित हुआ। यह देखकर वेंकटेशय्या और गोपाल को परम सन्तोष हुआ।

"तोड़ा बहुत अच्छा है। कितना पैसा लगा ?"

"लगभग नौ सौ रुपये।"

"यह मेरे नाम से 'शिष्य की सेवा' कहकर हमारे गुरुजी को भेज देना। इतना सुन्दर पदार्थ उचित स्थान पर पहुँचना चाहिये।"

लक्ष्मण के ये शब्द सुनकर दोनों स्तब्ध रह गये।

किंतु कुछ कहने से कुछ लाभ नहीं है यह सोचकर 'तथास्तु' कहकर चुप रह गए।

× × ×

नगर-सभा (टाउन हाल) के सामने एक बड़ा पण्डाल बनाकर

उसे खूब सजाया गया था। नव किसलयों की बन्दनवारें, केले के खम्भे, विद्युद्दीप-मालायें आदि अपनी निराली छटा दिखला रही थीं। पण्डाल विवाह-मण्डप जैसा दिखाई देता था। एक तरफ प्रसिद्ध नागस्वर (शहनाई) बजाने वाले मुनिरामय्या की दो मंडलियाँ थीं। सुन्दर वातावरण में शहनाई की मंडली अमृत-वर्षा कर रही थी। घोषणा कर दी गई थी कि उत्सव छै बजे से प्रारम्भ होगा किन्तु चार बजे से ही लोग सभा-भवन में आने लग गये थे। सैंकड़ों मोटरें आकर बाहर पंक्तिबद्ध खड़ी थीं। सारा नगर-का-नगर वहाँ आ गया था। जो लोग सब प्रकार के सार्वजनिक कार्यों में आगे रहते थे उन्होंने सभा को अलंकृत किया था। ठीक समय पर वैणिक शिखामणि शेषण्ण, गायक शिखामणि कृष्णप्पा के साथ पधारे। उनके साथ ही लक्ष्मण ने भी सभा-भवन में प्रवेश किया। जनता के जय-घोष ने कानों को बहरा कर दिया।

ईश-प्रार्थना और प्रारम्भिक भाषणों के बाद गोपाल ने उत्सव के उद्देश्य की व्याख्या करते हुए बतलाया कि लक्ष्मणराव ने कन्नड-संगीत और साहित्य का कितना महान् उपकार किया है और आगे करने वाले हैं। तदनन्तर शेषण्णा ने अपने भरे हुए हृदय से चार बातें कहीं। उन्होंने बतलाया कि किस तरह लक्ष्मणराव से मेरा परिचय हुआ, किस तरह उन्होंने मैसूर की लाज बचाई और अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

वेंकटेशय्या ने दिया हुआ तोड़ा हाथों में पकड़कर वह लक्ष्मण को दिखलाते हुए कहा, "मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि आपको ऐसे हजारों सम्मान प्राप्त हों। आज मेरे जीवन का सबसे आनन्दमय दिन है।"

लक्ष्मण तोड़ा लेकर हाथों में पकड़कर खड़ा हो गया। जनता के हथेलियाँ पीटने का शब्द जब तक बन्द नहीं हुआ, तब तक वह बोल ही नहीं सकता था। उसके बाद सभासदों की ओर से हार आने

रम्भ हो गये। लक्ष्मण पुष्प-हारों से लद गया।

जयकार की ध्वनि बन्द होते ही वह बोला, "आपने मेरा महान् आदर किया है। जो प्रतिष्ठा और प्रेम आपसे मुझको प्राप्त हुआ है, वह मेरी योग्यता से कहीं अधिक है। गुरु-स्वरूप शेषण्णा जी ने अपने दिव्य शब्दों से मुझे अपना चिरऋणी बना लिया है। मैं वस्तुतः इस प्रतिष्ठा का पात्र नहीं हूँ। संगीत की अधिष्ठात्री देवी शारदा मेरी आराध्य देवी है। मैं एक गरीब भिक्षुक हूँ और उस माता की सेवा से अपने जीवन को धन्य कर लेना चाहता हूँ।

मैंने अब तक यदि कुछ विद्या का परिचय दिया है या आज दूँगा तो उसकी कीर्ति में तीन गुरुओं को प्राप्त होनी चाहिये। वे तीन गुरु हैं, मुलबागिल चेन्नप्पा, अनन्ताचार्य जी, और तंजौर कृष्णय्यर जी। चेन्नप्पा जी का दर्शन मुझको केवल एक बार प्राप्त हुआ था, फिर नहीं हुआ। अनन्ताचार्य जी अनन्त शान्ति की गोद में विश्राम कर रहे हैं। हमारे पुण्य से तंजौर कृष्णय्यर जी अभी तक जीवित हैं। इस तोड़े का गौरव उन्हींको प्राप्त होना चाहिये। मेरी प्रार्थना है कि यह तोड़ा मेरे नमस्कार के साथ उनके पास भिजवा दिया जाय।"

इन शब्दों के साथ तोड़ा उसने वेंकटेशय्या के हाथों में दे दिया। लक्ष्मण की निर्लिप्तता देखकर सभा आश्चर्य-चकित रह गई। बैठने की जगह तैयार होते ही साजिन्दे आकर बैठ गये। लक्ष्मण ने तम्बूरे के तार ठीक करके अध्यक्ष की आज्ञा लेकर गाना आरम्भ किया।

संगीतोत्सव शंकराभरण राग से प्रारम्भ हुआ। लक्ष्मण ने ऐसा राग चुना जो सब स्वरों से युक्त और अतः पूर्ण है। इस राग में उसने बसवण्णा जी का वचन 'मडिकेय माडुवरे मण्णे मोदलु' गाया। उसके बाद पुरन्दरदास का 'होलेय होरगि हने ऊरोलमिल्लवे' यह कीर्तन मुखारी राग में और फिर कनकदास का 'तल्लणि सदिरु कंड्या एले

मनवे' यह कीर्तन केदार गौड़ राग में गाया। म्युनिसिपैलिटी घड़ी चुपचाप आगे चलती जा रही थी। समय की ओर किसी का ध्यान नहीं था। तब नौ बजे का समय सूचित करने के लिए एक सैकण्ड के लिए बिजली के लैम्प बुझ गये, जैसा कि हमेशा बंगलौर में होता है। यह देखकर सभासद् उसके अनुसार अपनी घड़ियाँ ठीक करके फिर तल्लीन होकर बैठ गये। लक्ष्मण को भी कुछ ध्यान ही न रहा कि अब गाना बन्द करना चाहिए। वह गाता ही चला गया। श्रोता लोग भी दीन-दुनिया की सब सुध-बुध भूलकर संगीत में मग्न हो गये।

अक्का महादेवी के 'तुम्बि दुडु तुलुकदु नोडा' इस वचन को सरस्वती राग में गाया।[१] संगीत भी बिना छलके भरता जा रहा था। जीवन्मुक्ता महादेवी का वचन भी अमृत के समान लक्ष्मण के मुँह में आ रहा था। उसके बाद बसवण्णा का 'छल बेकु शरणांगे' यह वचन हिन्दोल वसन्त राग में गाया। वचनों के गाने में दिखाई जाने वाली श्रद्धा-भक्ति को देखकर सभासद्गण आश्चर्यचकित रह गये कि यह गायक स्वयं वीर शैव[२] न होने पर भी इन वचनों को कितने हृदयंगम रूप से गाता है। लक्ष्मण की कला मत-मतान्तरों की सीमाओं का अतिक्रमण कर गई थी! उसने अपनी उत्कृष्टता से अनन्तता में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था। लक्ष्मण ने यह दिखला दिया था कि प्रगति के उस धरातल से पुरन्दरदास, कनकदास, बसवण्णा, प्रभुदेव, महादेवीयक्का सबको समान दृष्टि, समान धर्म, समान भक्ति और आदर से देखा जा सकता है।

अब लक्ष्मण ने कल्याणी राग को लिया। विस्तार से उस राग को

---

१. इस वचन का अर्थ है, अधभरी गगरी छलकती है, भरी कभी नहीं छलकती है।

२. लिंगायत, शिवोपासक कर्नाटक में प्रचलित एक सम्प्रदाय।

गाकर पुरन्दरदास का 'तनुव नीरोल गछि फलवेनु' यह कीर्तन गाया। इस कीर्तन में तथा इसके बाद मध्यमापति राग में गाये हुए पुरन्दरदास के 'जंगमरु नावु नीवे केलि' इस कीर्तन में यह भावना प्रकट की गई थी कि विचार रहित भक्तिहीन भक्ति है। इसके बाद बिलहरी राग में प्रभुदेव का 'सति भक्ति यादरे होलेंग जलागदु' यह वचन गाकर आनन्द भैरवी राग में पहुँच गया। लक्ष्मण को आवेश-सा आ गया था। वह वसवण्णा के 'एन्न कायव दण्डिगेय बसबय्या' इस वचन को गाने लगा। इस गीत में भक्त अपने इष्टदेव से कहता है कि मेरे शरीर के सब अंगों का ही तम्बूरा बन जाय और उस पर भगवान् का जय-गान गाया जाय। यह वचन लक्ष्मण की अपनी मनःस्थिति को ही सूचित करता था।

उसकी भक्ति-भित्ति के ऊपर जया का उदय हो गया था। एक तरफ यह प्रतीत होता था कि उसके जीवन के त्रिमूर्ति-स्वरूप गुरु खड़े होकर आशीर्वाद दे रहे थे। जया ने उसको दर्शन उसी दिन दिया था। आनन्द भैरवी समाप्त होने के समय लक्ष्मण का हृदय आनन्द की भैरवी गा रहा था। एकदम ऐसा प्रतीत हुआ कि लक्ष्मण के हृदय में किसी अपूर्व शक्ति ने प्रवेश किया। आनन्द भैरवी समाप्त होते ही फौरन उसने सीधे पूर्वी राग को ले लिया।

गोपाल अवाक् रह गया। ऐसा मालूम होता था, मानो किसी ने मारकर जगा दिया। सुन्दरराव और भीमराव दोनों अपने आसन से आगे को खिसक आये। पूर्वी अपने अमर वैभव में प्रकाशित होने लग गई थी। वातावरण पहले से ही गम्भीर था, अब उसमें दैविक गम्भीरता और शान्ति का भी उदय हो गया था। साजिन्दों ने साथ में बजाना छोड़ दिया और वे चुपचाप बैठे रह गये। एक लक्ष्मण के हाथ का तम्बूरा ही धैर्यपूर्वक श्रुति देता जा रहा था। राग प्रथम काल से द्वितीय काल में पहुँच गया था। लक्ष्मण की आँखों से आँसुओं की

धारा बह रही थी।

शान्ता को आश्चर्य हुआ कि वह आज पूर्वी क्यों गा रहा है। उसकी छाती लगातार धड़क रही थी।

श्रोतागण ने हाथ जोड़े। उनको ऐसा मालूम होता था कि साक्षात् सरस्वती ने ही आज उन पर अनुग्रह किया है।

राग दूसरे काल से तीसरे काल में पहुँच गया। लक्ष्मण की आँखों में जल-धारा थी। राग के लिये उचित वेग उसके गाने में दिखलाई देने पर भी मन शान्त था। राग समाप्त होने के समय तम्बूरे का उपरले षड्ज स्वर का तार टूट गया। उसके 'टड्' शब्द ने श्रोताओं को जगा दिया। तम्बूरा लक्ष्मण के हाथ से छूटकर भूमि पर लुढ़क गया। लक्ष्मण भी उसके साथ ही भूमि पर लुढ़क गया—जैसे कोई गाढ़ निद्रा-निमग्न शिशु माता की गोद में लुढ़क जाय !

"जया............"

ये दो अक्षर ही सब लोगों के कानों में पहुँचे। वही संगीतोत्सव का अन्तिम गान था—संगीतोत्सव समाप्त हो गया—गायक ने संध्या-राग में आत्म-नमस्कार निवेदन किया। आगे आने वाले गाढ़ान्धकार के लिए उसके प्रणाम का तेज ही प्रकाश-स्वरूप था। उसने अपने जीवन के संध्या-राग को गाकर समाप्त कर दिया। उसके अगले क्षण ही उदय राग की पुकार—

संध्या-राग सबको सुनाई दिया। किन्तु उदय राग सिर्फ लक्ष्मण के कानों में पडा !